ब्रह्म सत्यं जगत् सत्यं अंशो जीवो हि नापरः

अखण्ड भूमण्डलाचार्य जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठ, श्रीनाथद्वारा

पुष्टिमार्ग

त्रैमासिक पत्रिका

जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठाधीश्वर
आचार्यवर्य्य गोस्वामी तिलकायित
श्री १०८ श्रीराकेशजी (श्रीइन्द्रदमनजी)
महाराजश्री की आज्ञा से—

प्रकाशक

अजय कुमार शुक्ला
मुख्य निष्पादन अधिकारी
मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा (राज.)

30 जून 10
(वि.सं. २०६७)

दयाशंकर पालीवाल
सम्पादक

जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य प्रधान पीठाधीश्वर आचार्यवर्य्य गोस्वामी तिलकायित श्री १०८ श्रीराकेशजी (श्रीइन्द्रदमनजी) महाराजश्री की आज्ञा से सम्पादक दयाशंकर पालीवाल द्वारा सम्पादित एवं स्वत्वाधिकारी श्रीमन्दिर मण्डल, नाथद्वारा के मुख्य निष्पादन अधिकारी द्वारा प्रकाशित तथा ***श्रीसुदर्शन यन्त्रालय*** *मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा द्वारा मुद्रित।*

संरक्षक–मण्डल

अध्यक्ष

गो. ति. श्री १०८ श्रीराकेशजी (श्रीइन्द्रदमनजी) महाराजश्री

चि. गो. श्रीभूपेशकुमारजी (श्रीविशाल बावा)

प्रकाशकः–

अजय कुमार शुक्ला

मुख्य निष्पादन अधिकारी मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा

दयाशंकर पालीवाल

सम्पादक

जयदेव गुर्जर गौड़
परामर्शदाता

डा. देवर्षि कलानाथ शास्त्री
परामर्शदाता

न्यौछावर १५/– अंक– 2 प्रति १०००

नाथद्वारा मन्दिर मण्डल के मुख्य निष्पादन अधिकारी नाथद्वारा द्वारा प्रकाशित एवं श्रीसुदर्शन यन्त्रालय मन्दिर मण्डल द्वारा मुद्रित

R.N.I.No. RAJHIN-/1999-3432

प्राप्ति स्थान
श्रीगोवर्धन पुस्तकालय, धोली पटिया श्रीनाथजी मन्दिर
नाथद्वारा (राजस्थान) 313301

कृपया सदस्यता शुल्क वार्षिक–60), पांच वर्षिय–300) और आजीवन–800) भिजाकर शीघ्र सदस्य बनें और अन्य लोगों को भी बनाने का पवित्र कार्य करें।–सम्पादक

"जय श्रीकृष्ण"

सम्पादकीय–

मानव के कल्याण के लिए दार्शनिकों ने तीन मार्गो का प्रतिपादन किया है। कर्म, ज्ञान एवं भक्ति। वेद के पूर्व काण्ड में कर्म का, उत्तरकांड में ज्ञान का तथा शाण्डिल्य और नारदादि–कृत भक्ति सूत्र एवं पंचरात्र में भक्ति का शास्त्रीय ढंग से अतिसूक्ष्म निरूपण किया गया है। श्रीमद्वल्लभाचार्यजी कहते हैं कि कर्म एवं ज्ञान द्वारा भगवत् प्राप्ति नहीं हो सकती–भक्ति से ही भगवान् जाने जाते है– "भक्तैव भगवद् ज्ञानम्"। कर्म की अपेक्षा ज्ञान अवश्य उत्तम है किन्तु यही ज्ञान भक्ति–संवलित होने पर उत्तमोत्तम स्थिति में परिगणित हो जाता है। शंकराचार्य 'केवल' ज्ञान को मोक्ष सिद्धि का एक मात्र साधन मानते हैं। आचार्य श्री के मत में 'केवल' ज्ञान निरर्थक है। केवल ज्ञान द्वारा अज्ञान के नाश से सर्वज्ञता, अलौकिक तेजस्विता आदि अवश्य प्राप्त किये जा सकते है किन्तु ब्रह्मभाव की प्राप्ति कराने में यह असमर्थ है। ब्रह्मभाव की स्थिरता "अहंकार" के मूलतः विनाश के बिना असंभव है। 'अहं' की एकांत निवृति में ही मानव के अत्यंतिक–श्रेय का अरूणोदय है। भक्ति द्वारा ही माया की मूलतः निवृत्ति होने पर अनर्थ "अहंकार" का स्वतः शमन हो जाता है। भक्ति की प्राप्ति तो भगवत्सेवा द्वारा ही संभवित है। प्रस्तुत अंक में भक्ति–भाव जागरण का स्फुरण मिलता है।

चि. गो. श्रीविशाल बावा सा. की आज्ञा से श्रीदामोदर–पुष्टि–भक्ति–मार्गीय पाठशाला द्वारा सुलभ आलेख में श्रीनाथजी और गुसांईजी में परस्पर भावपूर्ण, बाल्याभावयुक्त, और श्रीनाथजी को बालक मानकर आग्रहयुक्त, आदेशात्मक और उनकी प्रसन्नता हेतु चोपड़ खेल प्रारंभ कराने की विनती तथा अजबकुंवरी बाई को मेवाड़ में पधारने की भविष्यवाणी चित्रित है। इस आलेख में चौपड़ का आध्यात्मिक विवेचन, उसका महत्व, श्रीजी द्वारा अंगीकृत किए जाने की भावना और केवल उनके द्वारा ही क्रीड़ा गम्य होना दर्शित होता है। पूज्यपाद ति.गो. श्रीराकेशजी महाराजश्री के मुख्य सचिव श्री जे. एन. कल्ला ने अपने आलेख में भक्ति की व्याख्या, प्रकार, भाव–भावना, प्रभु–प्रेम–प्रादुर्भाव, अष्टयाम सेवा, शरणस्थ जीव का अनन्य भाव से आनन्द में सराबोर होने और जीवन की सार्थकता–भगवान् की प्राप्ति का वैदुष्य व भावपूर्ण वर्णन किया है। प्रकाण्ड विद्वान डा. राकेश तैलंग ने महाप्रभुजी की पृथ्वी प्रदक्षिणा को राष्ट्रीय संवेदनाओं के जागरण और उनके विकास के प्रयास तथा वल्लभ दर्शन को भारतवर्ष के दुरस्थ, दुर्गम, दुरूह स्थलों तक पहुँचाने हेतु 84 बैठकों की स्थापना को उल्लेखनीय कार्य बताते हुए पुष्टिमार्ग की सृजन स्थली इन बैठकों को शुद्धाद्वैत दर्शन के शिक्षण अधिगम केन्द्र के रूप में विकसित किये जाने की अपेक्षा व्यक्त की है। 'धर्म के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान तनाव एवं पुष्टिमार्ग' आलेख में परमविद्वान श्रीगदाधर भट्ट ने धर्म, तनाव एव तनाव से मुक्ति का

विस्त्रित वर्णन करते हुए ऐषणाओं को प्रभु में समर्पण और रसमय पुष्टिमार्गीय सेवा प्रणाली में लग कर भगवत् लीला में अपना लय करने की दिशा दिखाई है। सरल–स्वभाव वैष्णव श्रीश्यामसुंदर गिरनारा ने विवेक धैर्य आश्रय के लिए सहज, सरल उपाय सुझाये हैं। प्रो. श्रीललितशंकर शर्मा ने अपने काव्य में प्रेम–ऐश्वर्य को पुष्टिवर्द्धन–स्वरूप परमात्मा को संतुष्ट करने वाला बताया है। विधि, विज्ञान और पुष्टिमार्ग मर्मज्ञ श्रीगोपालदास व. नीमा ने गंगावतरण का सरस वर्णन किया है। श्रीनाथजी मन्दिर के प्रधान उपाध्याय श्रीब्रजभूषण भट्ट ने ज्येष्ठाभिषेक (स्नानयात्रा) का भाव विश्लेषण और पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में आशौच–विचार आलेख में अगले क्रम में जनन–आशौच पर महत्वपूर्ण मार्गदर्शन दिया है। महाप्रभु की कृपा से स्पर्द्धाएं स्पर्द्धा न रहकर सत्संग स्वरूप धारण कर लेने का सत्य चित्रण किया है श्रीदयाशंकर पालीवाल ने। परम भगवदीय श्रीहरिनारायण नीमा ने परम भक्त ताजबेगम के अन्तर्मन से निःसृत अपने 'दिल जानी साहिब' के प्रति समर्पण की पराकाष्ठा का परिचय कराया है। शिक्षा एवं विज्ञान के मनीषी और पुष्टिमार्ग से ओतप्रोत श्रीप्यारेलाल पारीख ने प्रसंगों से श्रीजी की कृपा प्राप्ति केवल वैष्णव एवं गुरू माध्यम से होने की निश्चितता व्यक्त की है। मेवाड़–हारित–रिषी सम्मान प्राप्त पं. विष्णुदत्त पुरोहित ने भक्त शिरोमणि श्रीचतर्भुजदासजी को भगवत्लीला के आभास का भावपूर्ण वर्णन किया है। आर्ष ज्योतिष विशेषज्ञ परम विद्वान श्रीहरिकृष्णशास्त्री ने गो.ति. श्रीराकेशजी महाराजश्री के महामनोदार चरित्र–विवेचना–प्रशस्ति पर छन्द सृजित किये है। पुष्टिमार्ग में उष्णकालीन सेवाओं के भाव–रूप का सहज सरल व सरस प्रस्तुतिकरण किया है डा. गगन दाधीच ने। नवोदित पत्रकार श्रीनवीन सनाढ्य ने श्रीनाथजी की हवेली नाथद्वारा में स्नान–यात्रा उत्सव का रोचक वर्णन किया हैं। मन्दिर मण्डल नाथद्वारा के कम्प्यूटर प्रभारी श्री कैलाश पुरोहित ने वैष्णवजन–हितार्थ ओन–लाइन–व्यवस्था के शुभारम्भ की रिपोर्टिंग उल्लेखित की है। अमरीकन लेखक श्रीश्यामदास ने अपने अंग्रेजी आलेख में अगले क्रम में सरस प्रस्तुती की है। प्रभु श्रीनाथजी का अनुग्रह, पूज्यपाद ति. गो. श्रीराकेशजी महाराजश्री की कृपा, चि. गो. श्रीविशाल बावा सा. का सम्यक् मार्ग दर्शन, मुख्य निष्पादन अधिकारी महोदय की सदाशयता, परामर्शदाताओं का परामर्श और विद्वान लेखकों का लेखन मेरा सम्बल रहा है। पत्रिका का स्तर उत्तरोत्तर उत्तम बनता रहे और विद्वज्जन तथा पाठकों का सतत् सहयोग मिलता रहे यही प्रभु श्रीनाथजी से प्रार्थना है।

दयाशंकर पालीवाल (पूर्व प्राचार्य, शुद्धाद्वैत भूषण)
संपादक

अनुक्रमणिका

	विषय	प्रस्तोता	पृष्ठ सं.
*	सम्पादकीय	दयाशंकर पालीवाल	
1.	पुष्टिमार्गीय सेवा में चोसर–चोपड़ का महत्व	चि. गो. श्रीविशाल बावा सा. की आज्ञा से श्रीदामोदर–पुष्टिमार्गीय भक्तिमार्गीय पाठशाला से सुलभ आलेख	6
2.	भक्ति	श्री जे. एन. कल्ला, मुख्य सचिव, पूज्यपाद ति. महाराजश्री	10
3.	महाप्रभु वल्लभाचार्य की पृथ्वी प्रदक्षिणा	डॉ. राकेश तैलंग	13
4.	धर्म के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान तनाव एवं पुष्टिमार्ग	श्री गदाधर भट्ट	15
5.	विवेक धैर्य आश्रय	श्री श्यामसुंदर गिरनारा	19
6.	गंगावतरण	श्री गोपालदास व. नीमा	21
7.	ज्येष्ठाभिषेक (स्नान–यात्रा) : भाव विश्लेषण	श्री ब्रजभूषण भट्ट, प्रधान उपाध्याय	22
8.	महाप्रभु की कृपा से हुई सिद्ध, अभिनव स्पर्द्धाएं	दयाशंकर पालीवाल	23
9.	प्रभु श्रीनाथजी की परम भक्त ताजबेगम	श्री हरिनारायण नीमा	25
10.	प्रेम–ऐश्वर्य निरूपण	प्रो. श्री ललित शंकर शर्मा	27
11.	पुष्टिमार्ग के मन्दिरों में आशोच–विचार (जनन–आशोच)	उपाध्याय श्री ब्रजभूषण भट्ट	28
12.	श्रीजी की कृपा प्राप्ति वैष्णव एवं गुरू माध्यम से.........	श्री प्यारेलाल पारिख	31
13.	भक्त शिरोमणि श्री चतर्भुजदासजी को भगवल्लीला का आभास	पं. विष्णुदत्त पुरोहित	33
14.	गो.ति. श्रीइन्द्रदमनजी महाराजश्री के महामनोदार चरित्र की विवेचना–प्रशस्ति (छन्द)	श्री हरिकृष्ण शास्त्री	36
15.	पुष्टिमार्ग में उष्णकालीन सेवाओं का भाव–रूप	डॉ. श्री गगन बिहारी दाधीच	37
16.	विशाल बावा वैष्णवों के संग लाये स्नान का जल	श्री नवीन सनाढ्य	39
17.	On Line Cottage Booking On Line Donation व्यवस्था का शुभारंभ	श्री कैलाश पुरोहित	41
18.	THE LIFE OF SHRI MAHAPRABHU VALLABHACHARYA (c. 1479-1531)	-SHYAM DAS	42
19.	सदस्यता फार्म (हिन्दी)	मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा	43
20.	सदस्यता फार्म (अंग्रेजी)	मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा	44

पुष्टिमार्गीय विद्वज्जन से प्रामाणिक आलेख सादर आमन्त्रित है–

पुष्टिमार्गीय सेवा में चोसर–चोपड़ का महत्व

–चि.गो. श्रीविशाल बावा सा. की आज्ञा से श्रीदामोदर–पुष्टि–भक्ति–मार्गीय पाठशाला से सुलभ आलेख

शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय में आनन्दकन्द पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा पद्धति अन्य सम्प्रदायों से भिन्न अनिर्वचनिय, अतुलनीय एवं भावातिरेक से ओतप्रोत है। परम प्रभु आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की सेवा का प्रातःकाल के मंगला आरती दर्शन समय से लेकर सायंकालीन शयन आरती पर्यन्त संपूर्ण सेवाक्रम बाल्यभाव से श्रीमत्प्रभुचरण श्रीगुसांईजी श्रीविट्ठलनाथजी द्वारा निर्धारित किया गया है।

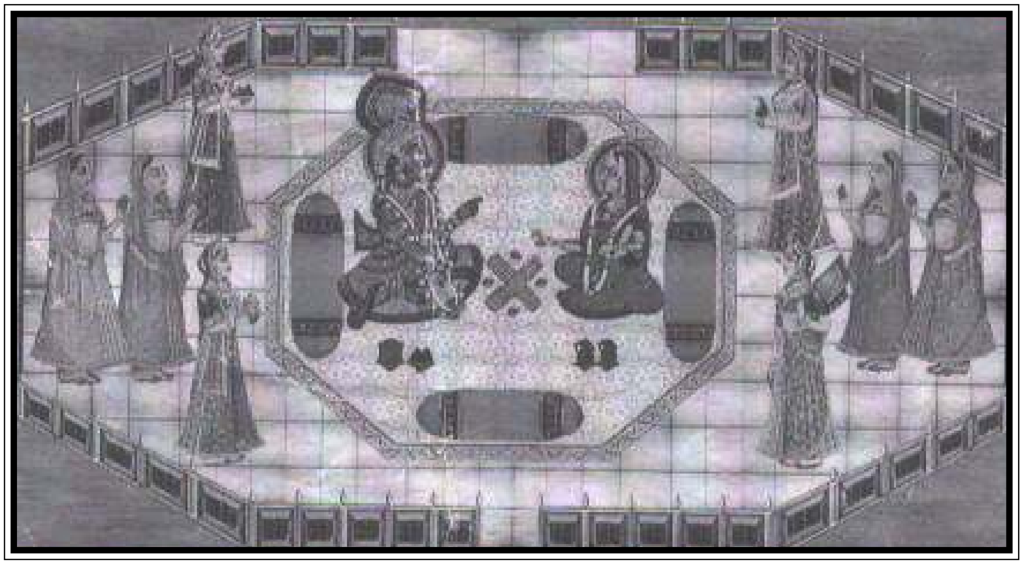

उपर्युक्त सेवा पद्धति में प्रातःकाल राजभोग के दर्शन से श्रीजी के सम्मुख क्रीड़ा के हेतु चोसर (चोपड़) पधराने का विधान है। श्रीगुसांईजी श्रीविट्ठलनाथजी आज्ञा करते हैं कि–

श्रीब्रजाधीश के शृंगार एवं शृंगारभोग के पश्चात राजभोग के समय चोसर पधरावे। श्रीप्रभुचरण द्वारा लिखित सेवा शिक्षा ग्रंथ में कथन है कि–

गोपिकाभावतःस्नेहान्भुक्तं तासां गृहे यथा।
मदर्पितं तथा भुक्ष्वं कृपया गोपिकापते।।
स्वर्णपात्रे पयः फेनपानं व्याजेन सर्वतः।
अभ्यस्यति प्राणनाथः प्रिया प्रत्यंग चुम्बनम्।।

गोपार्पितपयः फेनपानं यद्भावतः कृतम्।
मदर्पितपयः फेनपानं तद्भावतः कुरु।।

अर्थात् हे गोपिकापते प्राणनाथ परम प्रभु परमेश्वर जिस प्रकार से आपने गोपिकाओं द्वारा दत्त स्नेहयुक्त भावपूर्ण फेनयुक्त दुधपान, स्वर्ण पात्र से किया है उसी भाव से मेरे द्वारा अर्पित फेनयुक्त दुग्ध का पान करके मुझे अनुगृहीत करें।

तदुपरान्त गुप्त रस स्वामिनी स्तोत्र का पाठ करके आचमन कराकर खीर का डबरा समर्पित करे, पुनः आचमन कराकर आरती के पश्चात्–

ततोऽक्षक्रीड़ार्थम् अक्षादीन् निवेदयेत्।
क्रीड़ारुपात्मकैरक्षैः क्रीड़ार्थ स्थापितैः प्रभो।।
क्रीड़ा कुरु महाराज गोपिकाभिश्च राधया।

हे प्रभो आपके क्रीड़ा करने के हेतु ये चोसर पासे निवेदित किए हैं– इनसे आप श्रीराधिकाजी एवं गोपियां सहित क्रीड़ारुपात्मक पासों से क्रीड़ा कीजिए।

ततो राजभोगं समर्पयेत्।

इसके पश्चात् राजभोग समर्पित करें।

यथा गोवर्धने भुक्तं फलमूलादिकं हरे।
रामेणा सखिभिः सार्ध पुलिन्दीभि समर्पितम्।
तथा फलादिकं सर्व भुंक्ष्य भावार्पितं मया।
पुलिन्दीवत् भावदानात् सार्थकं जन्म मे कुरु।।

हे प्रभो जिस प्रकार से आप ने श्रीगिरिराज पर भिल्लनियों द्वारा भावना से समर्पित फलमूलादिक श्रीबलरामजी सहित आरोगे हैं उसी प्रकार भावना युक्त मेरे द्वारा समर्पित फलादि अंगीकार करके मेरे जन्म को सफल बनाइये।

यह उपर्युक्त सेवा विवेचन ग्वाल के समय से उत्थापन के समय पर्यन्त का चर्चित किया है– अब हम अपने मूल विषय पर आते हैं कि चोसर–चोपड़–चोपट श्रीठाकुरजी के सन्मुख कब आई?

श्रीनाथजी की प्राकट्य वार्ता में तत्संदर्भ में दो वार्ताएं हैं, जैसे कि "एक दिना श्रीनाथजी ग्वालियां की बेटी रुपमंजरी हती ताके संग चोपड़ खेलवे पधारे, चार प्रहर रात्रि वहाँ ही विराजे, नन्ददासजी को वाको संग हतो, गुणगान आछो करती हती ताके लिये नन्ददासजी ने रुपमंजरी ग्रन्थ कियो है वामे चोपाई धरी है– रुपमंजरी त्रिया को हीयो सो गिरिधर आपनी आलय कियो।

पाछे प्रातःकाल निज मंदिर में पधारे तब मंगला के समय श्रीजी के नेत्र कमल आरक्त देखे, तब श्रीगुसाईजी ने पूछयो–बावा आज रात्रि जागरण कहाँ भयो, तब श्रीनाथजी सब वृत्तान्त कहे– रुपमंजरी सो चोपड़ खेलने को गयो हतो, तब श्रीगुसांईजी

मने किये, लौकिक शरीर के लिए इतनी दूर परिश्रम न करिये– यहाँ व्रज भक्तन के संग सुखेन चोपड़ खेलो ताही दिनां सूं मंदिर में चोपड़ मंडी।'' उपर्युक्त वार्ता में श्रीनाथजी और श्रीगुसांईजी में जो परस्पर चर्चा हुई है वह कितनी भावपूर्ण, बाल्याभावायुक्त एवं श्रीनाथजी को बालक मानकर आग्रहयुक्त, आदेशात्मक तथा उनकी प्रसन्नता के हेतु यहीं पर चोपड़ का खेल प्रारंभ कराने की विनती है।

दूसरी वार्ता–

''ता पाछे श्रीजी श्रीगिरिराजजी सो मेवाड़ पधारकर अजबकुंवरी को नित्य दर्शन दे और तासो चोपड़ खेल के पीछे श्रीगिरिराजजी पधारे। इन दिना अजब कुंवरी ने श्रीजी से विनती करी आपको नित्य आवते, परिश्रम होत है ताते आप मेवाड़ में विराजे सो मोकूं नित्य दर्शन होय तब श्रीजी आज्ञा किये जहाँ ताई श्रीगुसांईजी भूतलपे हैं तहाँ ताई तो मैं श्रीगिरिराज कूं छोड़ि के ना आऊंगो पाछे मेवाड़ में अवश्य आऊंगो, और बहुत वर्ष पर्यन्त विराजूंगो जब फिर श्रीगुसांईजी अपने कुल में पुनः प्रकट होय के व्रज में पधरावेंगे तब व्रज में पधारुंगो और बहोत वर्ष पर्यन्त श्रीगिरिराज में क्रीड़ा करुंगो। श्रीनाथजी यह आज्ञा करिके श्रीगिरिराज पधारे।

उपयुक्त अजबकुंवरी बाई मेवाड़ में रहती थी और श्रीनाथजी श्रीगिरिराज से प्रतिदिन इतना श्रम करके चोपड़ खेलने पधारते, तो अजबकुंवरी बाई विनती करती है कि आप इतना श्रम करके मेवाड़ पधारते है। अतः आप मेवाड़ में ही विराजिए, उक्त कथन मेवाड़ पधारने के हेतु आग्रह एवं श्रीमुख से भविष्य ज्ञान प्रकट कराने का भाव है। श्रीनाथजी ने सम्पूर्ण भविष्यवाणी उक्त वार्ता में चित्रित कर दी है। तथा साथ ही श्रीनाथजी का श्रीगुसांईजी के प्रति सम्मान एवं श्रीगुसांईजी को श्रीगिरिराज ही अत्यन्त प्रिय हैं, यह सूचना भी निर्देशित है।

अब यहां प्रश्न यह है कि क्या चोपड़ का खेल इतना महत्वपूर्ण है जो श्रीपरम प्रभु परमेश्वर श्रीनाथजी को अत्यन्त प्रिय है। वैसे तो युधिष्ठिर की द्यूत क्रीड़ा सर्वविदित ही है; जिसमें वे अपना सर्वस्व–पत्नी आदि सब कुछ खो बैठे थे। तो क्या यह एक निकृष्ट वस्तु है? अथवा श्रीनाथजी द्वारा अंगीकृत होने से उत्कृष्ट क्रीड़ा है? चोपड़ का हम आध्यात्मिक विवेचन करते हैं तो ही उनका महत्व एवं श्रीजी द्वारा अंगीकृत किए जाने की भावना को समझने में समर्थ हो सकते हैं।

चोपड़ के चार पट–पल्ले होते है, मध्य में स्वस्तिक चिन्ह अथवा ऊँ लिखा हुआ होता है, चारों पटों को जोड़ने वाला चोकोर कुण्ड है। चोपड़ के चार पड़, चार युग– सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के प्रतीक हैं। मध्यस्थान (कुण्ड) मोक्ष स्थान हैं, अथवा चार पट मोक्ष के चार प्रकार अर्थात्– सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य और सारुप्य समझ लिये जा सकते हैं।

चोपड़ में चार विभिन्न रंग की १६ गोंट या सार होती हैं। कृष्ण वर्ण शूद्र का द्योतक हैं, पीत वर्ण या पीला कहिये ब्राह्मण वर्ण का सूचक है, एवं रक्त वर्ण क्षत्रिय, तथा हरित वर्ण वैश्य वर्ण का आभास देता है।

प्रत्येक रंग की चार–चार गोट–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, जो कि चारों वर्णों के लिए विधि द्वारा निर्धारित है, की सूचना देती है।

चोपड़ के प्रत्येक पट में इक्कीस खाने होते हैं। कुल मिलाकर चारों पटों में ८४ खाने हैं। यह जीव की ८४ लाख योनियों में भ्रमण की गति को प्रदर्शित करते हैं। जीव इन ८४ खानों में या ८४ लाख योनियों में घूमकर मोक्ष स्थान को प्राप्त होता है। कोई–कोई सनमार्गी पुण्यात्मा जीव ८४ लाख योनियों में निर्विघ्न घूमकर शीघ्र ही मोक्ष स्थान को प्राप्त होता है और निकृष्ठ अथवा अधर्मी या कुमार्गी जीव ८४ धरों में या ८४ लाख योनियों में भ्रमण करता रहता है। निर्गुण भक्तिमार्गीय जीव का सर्व प्रथम इस भव बन्धन एवं ८४ के फेरे से मोक्ष निश्चित ही है, जो गोट चीरे पर पहुँच जाती है, वह धर्मावलम्बन करके अपने आपको सुरक्षित समझने लगती है।

सदा एवं सर्वदा जीव परब्रह्म स्वरुप शक्ति से निर्देशित है, यह शक्ति चोपड़ के तीन पासे हैं, जिनके द्वारा चोपड़ खेली जाती। तीन पासे अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश जो कि सृष्टि के सर्जक, पालक एवं संहारक हैं। ये ही तीनों देवता जीव को इन ८४ लाख योनियों में परिभ्रमण करवा करके मोक्ष स्थान तक पहुँचाते हैं।

जीव के सुकृत होने से वह अथवा किसी धर्म के आश्रित हो जाने से वह चीरे पर बैठे समान, अपने आपको सुरक्षित समझने लगता है, अथवा मार्गच्युत हो जाने पर पिट भी जाता है, तो अब इसका विवेचन यह है कि–

त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) चोपड़– चोरस के खेल में जीव को ८४ लाख योनियों में घुमाकर मोक्ष स्थल की ओर ले जाती है, अतः सृष्टि के नियन्ता भगवान् चोपड़ का खेल अजब कुंवर बाई या रुपमंजरी अथवा गोपमण्डली के साथ क्यों नहीं खेलेगे? यदि वे ये खेल नहीं खेलते हैं तो सृष्टि का क्रम ही रुक जाने की सम्भावना हो जायेगी।

व्रजभाषा में चोपट को चोसर भी कहा है। 'सरतीति संसार : यह संसार शब्द की व्युत्पत्ति है, शंकराचार्य ने संसार को मिथ्या एवं ब्रह्म को सत्य घोषित किया है। प्रतिक्षण परिवर्तित होने वाला यह सर (तालाब) सहसार ही है, इसलिए चोसर शब्द में सर शब्द का प्रयोग है, इसका मतलब यह नहीं है कि चोपट सर्वजनहिताय खेल हो। युधिष्ठिर ने इस खेल को खेलकर सर्वनाश किया। किन्तु वहाँ भी क्रीड़ा करवाने वाले एवं बुद्धिभ्रम करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ही कर्ताधर्ता थे। उन्होंने यह खेल स्वयं के हेतु ही निर्मित किया है, वे ही सृष्टि रचयिता, पालक एवं संहारकारक हैं। साधारण जीव के द्वारा ये क्रीड़ागम्य नहीं है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

भक्ति

—श्री जे. एन. कल्ला, मुख्य सचिव

शब्द भक्ति की व्युति प्रति शब्द भज से हुई है जिसका अर्थ होता है 'सेवा करना'। इसके साथ 'क्ति' अक्षर जुड़ा है जो प्रेम के अर्थ में प्रयुक्त होता है। पूरे शब्द का अर्थ होता है 'प्रेम से सेवा'। इस प्रकार भक्ति शब्द का सैद्धांतिक रूप से अर्थ हुआ सेवा जो कि दैविक सेवा के संदर्भ में है। इस प्रकार सम्पूर्ण भक्ति शब्द का अर्थ हुआ प्रेम से भगवद् सेवा करना।

वैसे भगवद् प्राप्ति का श्रेष्ठतम साधन 'भक्ति' ही है। इतिहासिक रूप से प्राचीनतम दो ग्रंथ जिनमें प्रकृति व कार्य के अनुसार भक्ति को परिभाषित किया गया है वे है शांडिल्य का 'भक्ति सूत्र' व नारद द्वारा विरचित 'नारद सूत्र'। दोनों ही भक्तिमार्ग के निष्ठावान अनुयायी थे। दोनों ही भगवान् तक पहुंचने के लिए भक्तिमार्ग को सर्वश्रेष्ठ बताते है, फिर भी भक्ति की परिभाषा के संबंध में दोनों में थोड़ा अंतर भी है। नारद भक्ति के लिए भक्ति के पूर्व ज्ञान की प्राप्ति पर बल देते है जबकि शांडिल्य भगवान के प्रति अविच्छिन्न प्रवाहित प्रेम को भक्ति की संज्ञा देते है। ज्ञान उपार्जन से विद्या स्वरुपमान होती है, जिसका उल्लेख महाप्रभुजी ने तत्वदीप निबंध में किया है।

भक्ति के दो मुख्य रूप है :—

1. साधन—रूपा भक्ति और
2. साध्यरूपा भक्ति या प्रेम लक्षणा भक्ति

साधन रूपा भक्ति के नौ उपांग है जो नवधा भक्ति के नाम से जाने जाते है। वे निम्न प्रकार है :

1. श्रवण भक्ति — कथा आदि सुनना।
2. कीर्तन भक्ति — भजन कीर्तन द्वारा प्रभु का गुणगान करना।
3. स्मरण भक्ति — एक स्थान पर बैठकर प्रभु और उनकी लीलाओं का स्मरण।
4. प्रभु सेवा — सेवा
5. अर्चना भक्ति — वैदिक प्रणाली से प्रभु की पूजा करना।
6. वंदना भक्ति — प्रभु की प्रार्थना व वंदन आदि करना।
7. दासत्व भक्ति — दास—भाव से सेवा करना।
8. संख्य भक्ति — सखा भाव से प्रभु की सेवा घ्यान आदि करना।
9. आत्म निवेदन भक्ति— आत्म निवेदन द्वारा भक्ति करना।

दसवीं प्रकार की एक अन्य भक्ति है जिसे प्रेम लक्षणा भक्ति या साध्य रूपा भक्ति के नाम से पुकारा जाता है।

प्रेम लक्षणा भक्ति प्रभु को प्राप्त करने का एक अनमोल साधन है इसलिए इसे सर्वश्रेष्ठ 'सोपान' पर रखा गया है। प्रेम लक्षणा भक्ति से प्रभु की शीघ्र प्राप्ति हो जाती है।

वल्लभ के दर्शन में भक्ति को भगवद् प्राप्ति का सर्वोच्च प्रकार बताया गया है। उन्होंने अपने ग्रंथ 'भक्ति–वर्द्धिनि' में भक्ति की प्रकृति व अवस्थाओं का वर्णन भी किया है। उनके पुत्र गुसांईचरण ने दो स्वतंत्र ग्रंथों 'भक्ति हेतु' तथा 'भक्ति हंस' में प्रेम रूपा भक्ति की अन्य साधनों से तुलना की है और उसे अन्यान्य साधना की तुलना में श्रेष्ठ बताया है। योगी गोपीश्वरजी ने भी अपने श्रेष्ठतम ग्रंथ 'भक्ति–मार्त्तण्ड' में इसी प्रकार भक्ति की सर्वोच्चता स्थापित की है।

महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने इस प्रेम–लक्षणा भक्ति को साध्य भक्ति बताया है और उसकी कुछ विशेषताएँ बतलाई है जो इस प्रकार है। यह नैसर्गिक, निरूद्देश्य और निरंतर होनी चाहिए। वह ह्रदय की शांत व कोमल भावनाओं से निसृत होनी चाहिये ताकि भक्त प्रभु का अनुभव प्राप्त करने योग्य बन सके। प्रेम से प्रभु की सेवा करने से उसे अनुभव की प्राप्ति होती है। दो तत्वों से प्रभु के प्रेम का प्रादुर्भाव होता है वे दो तत्व निम्न प्रकार है:–

1. हरिभक्तों के साथ सत्संग और
2. हरिभक्तों की सेवा।

भक्ति चातक पक्षी के सदृश होनी चाहिए जो बिना जल भले ही तृषित मर जाएँ पर अपनी टेक नहीं छोड़ता। पुष्टिमार्ग में इस प्रेम–लक्षणा भक्ति की चार अवस्थाएँ बतलाई गई हैं : प्रेम, आसक्ति, व्यसन तथा तन्मयता। पहली अवस्था (प्रेम) में जीव एक बार दर्शन प्राप्त करने के पश्चात बार बार दर्शनों की इच्छा ही नहीं रखता बल्कि दिन में एक बार प्रभु दर्शन बिना रह नहीं सकता। आसक्ति अवस्था में जीव का ह्रदय अपने प्रेमी प्रभु के सम्मुख प्राप्त होते ही टूक टूक होने लगता है। व्यसन अवस्था में सम्पूर्ण इन्द्रियों सहित प्रभु में इतना खो जाता है कि भौतिक संसार उसके लिए विस्मृत हो जाता है। तन्मय अवस्था में भक्त का ह्रदय अपने प्रभु में इतना निरूद्ध हो जाता है कि वह विक्षिप्त सा. हो जाता है।

पुष्टिमार्गीय आत्म–निवेदन भक्ति प्रणालिका में महाप्रभुजी द्वारा निर्धारित अष्टयाम सेवा मुख्य है। गुसांई बालकों द्वारा पधराये गये ठाकुर विग्रह, मात्र नहीं है बल्कि साक्षात् लालन प्रभु है। लालन प्रभु की सेवा से प्रसन्न होकर उसे सानुजता भी जताते है। यह सेवा किस भाँति होनी चाहिये इसके लिए दो उदाहरण प्रस्तुत किये गये है।

पहला सिर पर मटकी रखी पनिहारिन का है जो लोक व्यवहार यथावत करती है परन्तु उसकी चेतना घड़े में समाई रहती है ताकि न तो घघरी का जल छलके और न वह गिर के टूट जाये। दूसरा उदाहरण सुई में धागा पिरोती स्त्री का है, जो मन, वचन, कर्म से एकाग्र मन होकर अपना ध्यान सुई के छिद्र में रखती है ताकि डोरा पिरोया जा सके। भक्ति में इसी प्रकार की चेतना व भगवान में तन्मयता रखकर सेवा करनी होती है तभी वह फलीभूत होती है। सेवा और उसकी फलवतता के उदाहरणों से दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता का साहित्य भरा हुआ है।

भक्त नेत्रों से प्रभु की छवि निहारता है और उसे हृदय में सजोता रहता है। कानो से प्रभु की कथा श्रवण करता है और रसना से उसका गुणगान करता है। सभी इन्द्रियां कृष्णोन्मुखी हो जाती है। भगवान् भक्त में और भक्त भगवान् में खो जाते है। भक्त गोपी रूप हो जाता है। कबीर के कथन की भाँति जल में घट और घट में पानी, बाहर भीतर पानी जैसी स्थिति हो जाती है। वह सभी में कृष्ण और कृष्ण में सभी को देखता है। घटोत्कच के सिर को जब पूछा गया कि कुरुक्षेत्र के युद्ध में तुमने क्या देखा तो उसने प्रत्युतर दिया कि मैंने दोनो ओर कृष्ण को ही देखा। यशोदाजी ने जब भगवान् कृष्ण के मिट्टी खाते हुए मुख को खुलवा कर देखा तो मुँह में अखिल ब्रह्माण्ड के दर्शन हुए। भक्त के लिए वह सर्वश्रेष्ठ, सर्वव्यापी व सर्वत्र है।

अष्टछाप के कवियों ने अपनी पदावली में उसकी इस महिमा को लीलाओं के द्वारा उसके परमानन्द, रूप को आनंद से उकेरा है। उनके पदों में भाव, विभाव, अनुभाव और रस निष्पति सभी कुछ है। वे पूतना, अघासुर, बकासुर, आदि असुरों को मारते ही नहीं बल्कि बंशी के मधुर स्वर से देवभोग्या, भक्त–भोग्या और सर्वभोग्या स्वरों का निनाद भी करते है ताकि सभी अपनी योग्यता के अनुसार उसे ग्रहण कर सके। बंशीरव की स्वर लहरिया सदैव हवाओं में है। मन को एकाग्र करके उसमें जोड़ो तो सुन सकोगे।

दीक्षित शरणस्थ जीव जो अन्यान्य भाव से उसी को अपना आश्रय समझ कर मन को उसी में पिरोकर सेवा में जुड़ गया वह आनंद में सराबोर हो गया। ऐसा भक्ति में 'बड़ा' भक्त आनंद के अतिरेक से नृत्य करने लगता है और उसके मन का कण कण स्पन्दित होने लगता है। नेत्रों के समक्ष उसकी छवि चित्रांकित होकर तैरने लगती है। प्रातः जब वह सेवा के लिए मंदिर में प्रवेश करता है तो उसी छबि को साक्षात् अपने नेत्रों के सम्मुख पाकर वह भक्ति और सेवा के द्वारा अपने भगवान् को प्राप्त कर लेता है। यही जीवन की सार्थकता है। यही जीवन का श्रेय है जिसे प्राप्त करने के लिए जीव भूतल पर आया है।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

महाप्रभु वल्लभाचार्य की पृथ्वी प्रदक्षिणा

—डा. राकेश तैलंग

महाप्रभु वल्लभाचार्यजी को भारत की सांस्कृतिक एकता के अग्रदूत के रूप में नमन किया जाए तो यह अतिशयोक्ति का विषय नहीं माना जाना चाहिए। दक्षिण भारत की चिन्तन एवं क्रियात्मक परम्परा को उत्तर भारत की आनन्दोल्लास मय जीवन पद्धति के साथ समन्वित कर जिस कुशलता से तत्कालीन विकट राजनीतिक व सामाजिक वातावरण से संत्रस्त आमजन को भगवद्भक्ति व सेवानुराग का जो अभेय पान कराया वह बीते हुए कल व आने वाले कल को बिसार कर 'आज के आनन्द की जय' में परिणत हो गया।

उक्त समन्वय का कार्य आचार्यश्री वल्लभ ने मात्र ग्रन्थों के प्रणयन अथवा शास्त्रों के बौद्धिक चर्वण द्वारा पूर्ण कर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मान ली हो, ऐसा नहीं है। अपनी दृष्टि को अपने राष्ट्र की विभिन्न विचार सरणियों के साथ संवादित करने हेतु आपने सम्पूर्ण जीवन काल में भारत वर्ष की तीन बार यात्राएँ की जो आगे चलकर पुष्टिमार्गीय आचार्यों द्वारा 'परदेस' करने की एक श्रेष्ठ परम्परा के प्रवर्त्तन का कारण बनीं। ये यात्राएँ तलस्पर्शी विद्वानों के लिए अपने धर्म के प्रचार के उद्देश्य से की गई यात्राएँ हो सकती हैं लेकिन महाप्रभुजी ने इन्हें अपने अनुभव विस्तार, विविध भौगोलिक, सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेशों के मध्य उन उभयनिष्ठ सूत्रों को तलाश करने हेतु कसौटी स्वरूप माना जो मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति को समान रूप से उदत्त बना सके। इन पंक्तियों के लेखक को ऐसा प्रतीत होता है कि राग, भोग व शृंगार तीन ऐसे क्षेत्र इन यात्राओं के मध्य वे खोज पाए जो देश, काल, भूगोल की दृष्टि से विविध रूपा संस्कृति वाले इस देश के जन जन को समान रूप से वरेण्य हो सकते हैं।

वि.सं. 1548 में समारम्भ प्रथम यात्रा में आचार्यश्री ने ओड़छा में घट सरस्वती नामक तांत्रिक विद्वान से शास्त्रार्थ किया एवं वहाँ से ब्रजमण्डल में पहुँचकर गोकुलतीर्थ का चिह्नीकरण किया। शिष्य दामोदर दास हरसानी को समर्पण मंत्र की दीक्षा देकर आपने पुष्टिमार्ग का समारम्भ भी यहीं किया। अतएव पृथ्वी प्रदक्षिणा या दिग्विजय के इस प्रथम पड़ाव को हम महाप्रभुजी के सोच को आकार में परिवर्तन करने की दूरगामी दृष्टि के रूप में दृष्टिगत कर सकते हैं, वि.सं. 1553 में प्रथम यात्रा के विश्राम का यह एक पड़ाव था।

वि.सं. 1554 से प्रारम्भ पृथ्वी प्रदक्षिणा का दूसरा चरण इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि तब गिरिराज पर्वत पर आपने श्रीनाथजी के स्वरूप की स्थापना कर सेवामार्ग का सन्धान किया था। शिष्य सेवक परम्परा का प्रारम्भ कर महाप्रभुजी ने तब अपने चिन्तन को जन भावनाओं व सौख्य से जोड़कर विस्तार प्रदान किया। कैसे दक्षिण भारत का एक सन्त उत्तर भारतीय जन मानस में अपनी भाव व विचार संपदा द्वारा स्थान बना लेता है, दिग्विजय यात्रा के इस दूसरे चरण में देखा गया। वि.सं. 1558 में इस यात्रा ने विश्राम ग्रहण किया।

अल्पावधि के अन्तराल में ही वि.सं. 1558 के पौष मास में श्रीवल्लभ की तृतीय यात्रा गोवर्द्धन में श्रीनाथजी के विशाल मन्दिर का हेतु बनी। ब्रज से चलकर इसी अवधि में आप काशी पहुँचे जहाँ पत्रावलम्बन ग्रन्थ के माध्यम से शैव व वैष्णव धर्म के मध्य संवाद

की स्थापना की। यहाँ से आगे चलकर वे विद्यानगर पहुँचे जहाँ उन्होंने कनकाभिषेक–सम्मान से सम्पूर्ण वैष्णव जगत् को गौरवान्वित किया। यह यात्रा उत्तर व दक्षिण भारत की धार्मिक सांस्कृतिक–आध्यात्मिक अस्मिता के मध्य अभूतपूर्व सामंजस्य के रूप में देखी जा सकती हैं जिसके सूत्रधार बने महाप्रभु वल्लभाचार्य।

धर्माचार्य व सन्त समाज की किसी भी राष्ट्र को सबसे बड़ी देन होती है, संवेदनाओं का जागरण एवं उनका निरन्तर विकास। इस हेतु देशाटन सबसे सशक्त माध्यम कहा जा सकता है। महाप्रभुजी ने न केवल यात्राओं के माध्यम से राष्ट्र की विश्रृंखलित संवेदना को अखण्ड बनाने का प्रयास किया प्रत्युत इसके लिए विधाओं का भी उत्खनन किया। शास्त्रार्थ, शिष्य सेवकों की सतत् सृष्टि–विस्तार एवं स्वयं द्वारा रचित अथवा विमर्शित ग्रन्थों के प्रकाशन एवं उद्घाटन द्वारा विद्या–विस्तार कार्यक्रम। इन सबसे बढ़कर इस दिशा में एक उल्लेखनीय कार्य जिसके द्वारा वल्लभ दर्शन भारतवर्ष के दूरस्थ दुर्गम एवं सामान्यजन की पहुंच से अपेक्षाकृत दुरूह, स्थलों तक पहुँच सका, आचार्यश्री द्वारा किया गया जो था 84 बैठकों की स्थापना। इन पंक्तियों के लेखक की दृष्टि में ये बैठकें पुष्टि दर्शन की वास्तविक दृष्टि से 'पीठ' कही जानी चाहिएँ क्योंकि सात पीठों के केन्द्र तो उत्तर भारत तक कतिपय विशेष जनपदों तक सिमट कर रह गए जबकि ये बैठकें भारतवर्ष की सांस्कृतिक धमनियों में विचार–भाव की रक्त कोशिकाएँ बनकर फैल गई।

ब्रजमण्डल में स्थित गोकुल, वृन्दावन, मथुरा, मधुवन, कमोदवन, बहुलावन, राधाकुण्ड, मानसी गंगा आदि बैठकों का वैष्णव जगत् से परिचय ब्रजयात्रा के अवसरों पर सहज ही हो जाता है, किन्तु वे बैठकों जो ब्रज क्षेत्र से दूर अथवा अन्य प्रान्तों में हैं, पुष्टि सम्प्रदाय के राष्ट्रव्यापी होने की पुष्टि करती हैं। जनकपुर, गंगासागर, चम्पारण्य, जगन्नाथपुरी, पंढरपुर, नासिक, पन्नानृसिंह, लक्ष्मणबालाजी, श्रीरंगजी, सेतुबन्ध रामेश्वर, लोहगढ़ (कोंकण), कृष्णानदी, पंपासरोवर, दर्भशयन, पिण्डतारक, गुप्त प्रयाग, कुरुक्षेत्र, बद्रिकाश्रम, हरिद्वार, केदारनाथ एवं हिमालय पर्वत पर स्थित बैठकें महाप्रभुजी की उन कठिन लेकिन सोद्देश्य यात्राओं का स्मरण दिलाने हेतु पर्याप्त हैं जो आवागमन के साधनों से विहीन युग में उन्होंने पूर्ण की होंगी। ये समस्त 84 बैठकें भागवत पारायण की पवित्र क्षणिकाओं का स्मरण दिलाती हैं जिनके पुरस्कर्ता बने स्वयं महाप्रभुजी। उनके द्वारा इन स्थलों पर स्मृति स्वरूप भूगर्भस्थ की गईं चरणपादुका एवं झारी इन बैठकों के महाप्रभुजी से सम्बद्ध होने का प्रमाण बनीं। प्रत्येक बैठक महाप्रभुजी के रोचक भाव भरे संस्मरणों से सम्बद्ध हैं और इन्हीं बैठकों में बिराजकर पुष्टिमार्ग के अन्तर्हित दर्शन से जन जन को परिचित कराया था आचार्यश्री ने।

नहीं ज्ञात कि आज इन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थलों के जीर्णोद्धार की क्या स्थितियाँ हैं लेकिन यह अत्यन्त आवश्यक है कि पुष्टिमार्ग की सृजन स्थली इन बैठकों को शुद्धाद्वैत दर्शन के शिक्षण अधिगम केन्द्र के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। पुष्टिमार्ग के सप्तपीठ के आचार्य वर्ग को प्रायोजनात्मक तरीकों से इन बैठकों का एकमुश्त व समरूप विकास का बीड़ा उठाना चाहिए। यह श्रीवल्लभ जैसे राष्ट्र पुरुष के प्रति हमारी सच्ची भावांजलि होगी।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

धर्म के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान तनाव एवं पुष्टिमार्ग

—श्री गदाधर भट्ट

वाल्टेयर का कथन है— ''यदि तुम मुझसे वार्तालाप करना चाहते हो तो अपने शब्दों को परिभाषा दो''— कोई भी संवाद विशेषरूप से जब शास्त्रीय हो। सही चिंतन की दिशा में लोक, प्रचलित शब्दों के उत्पीड़न से मुक्त होने की अपेक्षा रखता है। धर्म, संस्कृति एवं धर्म निरपेक्षता शब्दों के साथ ऐसा ही अत्याचार हुआ है। ये शब्द हमारे जीवन में ओतप्रोत हैं। हमने अंग्रेजी से अनुवाद कर अवमूल्यन, शोषण कर दिया है, जबकि ये शब्द हमारी भाषा के अपने हैं। अंग्रेजी शब्द हैं— रिलीजन, कलचर एवं सेक्युलरिज्म। भारतीय संस्कृति में धर्म को व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राष्ट्र का धारक ''धारणात् धर्म इत्याहुः'' (महाभारत) जीवन का पर्याय माना गया है। प्रेम, सहिष्णुता, कर्तव्य, शान्ति, समरसता, अहिंसा, भक्ति ऐसे मूल्य हैं, जिन पर हमारे जीवन का अस्तित्व है। धर्म— लौकिक और अलौकिक उन्नति का माध्यम है। धर्म ऐसा सागर है, जिसमें विभिन्न संप्रदाय धारा समूह मिलकर एकाकार हो जाते हैं :—

''आकाशत् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम्।
सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति (पुराण)।''

भारतीय चिंतन धर्म को अनिवार्य, सापेक्ष मानता है। धर्म निरपेक्षता पश्चिम का सोच है। सेक्युलर शब्द धर्म की संधारणा को भ्रमित करता है। शुद्ध रूपान्तर 'पन्थ निरपेक्ष' है। धर्म अक्षुण्ण सनातन है, जिसका मूल वेद है—

'वेदोऽ खिलो धर्ममूलम्'—मनुस्मृति

यह धर्म ही विश्व में हमारी पहचान है। धर्म और संस्कृति अभिन्न रूप से जुड़े हैं, जिनका अन्तिम लक्ष्य आत्मा का उत्कर्ष है। आधुनिक सोच के अनुसार संस्कृति, व्यक्ति एवं समूह को परिष्कृत व समृद्ध बनाती है। नृशास्त्री संस्कृति और सभ्यता को अभिन्न मानते हैं। भारतीय चिंतन—धर्म, दर्शन, इतिहास, वर्ण, रीति—परम्परा को संस्कृति के पांच अवयव मानता है। पूजा एवं उपासना में अनेकता, विविध दार्शनिक सिद्धान्त बहुदेवतावाद, अनेक धर्म मार्ग, सहिष्णुता—भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ हैं। पाश्चात्य संस्कृति विशुद्ध भौतिकवादी हैं। मुख्यतः भौतिकवाद के कारण इसने ऐसी मूल्य प्रणाली विकसित की है, जिसकी धुरी है उपभोगवाद और जिसका परिणाम है स्वेच्छाचार। पश्चिमीकरण ने हमें चरम भौतिकवाद की और धकिया दिया है। पाश्चात्य प्रतिमानों को हमने प्रगति के नाम पर सार्वभौम आदर्श के रूप में स्वीकार कर लिया है। यह भयावह और चिंतनीय है। आज भूमण्डलीकरण एवं वैश्वीकरण का श्रेय पश्चिम को दिया जा रहा है, वास्तविकता तो यह है कि अतीत में हमारे ऋषियों ने ''वसुधैव

कुटुम्बकम्– पृथिव्यैः समुद्रपर्यन्ताम्– एक राष्ट्र'' की घोषणा की थी। विश्ववाद भारतीय संस्कृति की अमूल्य देन है। इस अवदान को भुलाया नहीं जा सकता है।

चरम भौतिकवाद ने हमारे भारतीय मूल्यों का तेजी से क्षरण किया है। आज का मानव अत्यन्त तनाव एवं चिंताओं से ग्रस्त है। धर्म के छह अंग–देश, काल, द्रव्य, कर्ता, मंत्र, कर्म–विनाश की ओर अग्रसर हैं। ऐसे में भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ही भजनीय है। व्यापक अर्थ में धर्म जीवन प्रणाली है, जिसमें व्यवहार, विचार, भावना, कर्मकाण्ड सभी का समावेश है। धर्म में दार्शनिक, पौराणिक एवं आनुष्ठानिक (कर्मकाण्ड) तीन विभाग हैं। शरशैयाशायी भीष्म पितामह ने धर्मराज युधिष्ठिर के पूछने पर धर्म को इस प्रकार परिभाषित किया है–

''यद् भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा'' (महाभारत)

भक्ति वह है जिसमें पुण्डरीकाक्ष भगवान् कृष्ण का सदैव स्तवन अर्चन हो। पुनश्चः–

''प्रभु सहस्त्रनामस्तवनं भक्त्या, तत्सेवनं च परमोधर्मः'' (महाभारत)

प्रभु की हजार नाम की स्तुति तथा भक्तिपूर्वक उनकी सेवा ही कर्म है। तभी तो पुष्टिमार्ग में चतुश्लोकी में आचार्य चरण ने कहा है–

''सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः।
स्वस्यायमेव धर्मो हि नान्यःकापि कदाचन।।'' (चतुःश्लोकी)

सभी धर्मों का विकल्प पुष्टिमार्ग है, जहां सर्वात्म भाव से प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण ही सेव्य हैं, जो तनाव एवं चिंताओं से मुक्ति प्रदान करते हैं। यह ही सबसे बड़ा धर्म है।

चरम भौतिकता के कारण हमारे धर्म, विवेक और हमारी धर्म निष्ठा में कमी आई है। हम भौतिक जगत् में आकाशीय उड़ान भरना चाहते हैं। धर्म और संस्कृति गतानुगतिक नहीं होती है। ये हमारी जीवन पद्धतियां हैं। मनुष्य प्राणियों में सर्वाधिक बुद्धिमान हैं। चिंता, निवृत्ति के लिए उसे बौद्धिकता की अपेक्षा धार्मिकता की ओर ध्यान देना चाहिए। क्योंकि कहा गया है–

धर्मोहि तेषां ह्रयाधिको विशेषः।
धर्मेण हीनाः पशुभिस्समानाः।

जीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म ही पहला महत्वपूर्ण पुरुषार्थ है। धर्म के बिना मनुष्य पशु के समान है। पशु और मनुष्य में धर्म ही विशेष है, जो एक–दूसरे को पृथक करता है। चिंता और तनाव से मुक्त होने के लिए धार्मिक सोच की आवश्यकता है। भौतिक विकास की पराकाष्ठा के मूल में आधुनिक विज्ञान है जो प्रकृति पर विजय की कामना करता है। यह अपरिहार्य है, आज हम आन्तरिक प्रकृति को जीतें। तभी तनाव

पर हम विजय प्राप्त कर सकते हैं। यह चितवृत्ति के निरोध से संभव है। यह निरोध प्रभु में होने पर मनुष्य रात–दिन आनन्द में निमग्न होकर आनंद सागर में डूबता उतरता रहता है। श्रीमद्‌वल्लभाचार्य का कथन है– "निरोध से बढ़कर न कोई मंत्र है, न स्तोत्र है, न विद्या है और न तीर्थ ही।"

नातः परतरो मन्त्रो नातः परतरः स्तवः।
नातः परतरा विद्या नातः परात् परम्।।" (निरोध 20)

कभी–कभी तनाव को वैराग्य से मुक्त करने का असफल प्रयास होता है। संसार को "जगन्मिथ्या" मानना जीवन के प्रति पलायनवाद है। आचार्य चरण ने पश्चत्ताप की निवृत्ति के लिए सन्यास (वैराग्य) पर विचार किया है। सन्यास निर्णय में उनका निर्देश है–

"अतः कलौ स सन्यासः पश्चात्तापाय नान्यथा।" (सन्यास निर्णय–16)

कलियुग में सन्यास पश्चाताप ही कराता है जो अनासक्ति, पाखण्डीपन को जन्म देता है। भक्तिमार्गीय सन्यास अनासक्ति उत्पन्न कर भगवद्‌भक्ति में सहायक होता है, जो स्वीकार्य है।

चरम भौतिक जगत् में ज्ञान, शक्ति और क्रिया शक्ति का नियमन कर सार्थक बनाता है। अन्त में भगवद् विनियोग के रुप में जीवन की श्रेष्ठ उपलब्धि है। यह जीवन का अन्तिम पुरुषार्थ भी है। यह संपूर्ण जगत् प्रभु की क्रीड़ा है, इस क्रीड़ा में हम खिलौने हैं। हमारी भागीदार, अहमता–ममता का त्याग करते हुए सार्थक हो सकती है। यह ही हमको तनाव से मुक्त कर सकती है। भगवद् विनियोग के लिए प्रभु का दासत्व (दासोऽहम्) स्वीकारना होगा। "ममता" हमें संसार की ओर उन्मुख कर भोगों को प्रोत्साहन देती है। "अहम्" मनुष्य के कर्तव्य का मिथ्या बोध कराता है। वस्तुतः न कुछ भोग्य है और न अहं कार्य क्योंकि उपनिषद् कहते हैं :–

"ईशावास्यमिंदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्" (ईशावास्योपनिषद्)

यह सब प्रभुमय है। भगवद्‌गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं–

"अहंकार बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्म भूया कल्पते।।" (अध्याय 18/53)

यहां प्रभु अहंकार एवं इसके सहयोगी बल, दर्प, काम, क्रोध और परिग्रह को त्यागने तथा शान्त एवं ममत्व रहित होने का आग्रह करते हैं, जो प्रभु से साक्षात्कार का दिशा बोधक हैं। पुष्टिमार्ग संसार में त्याग एवं भोग के अतिवाद को दूर कर "आत्म निवेदन" को ही एक मात्र विकल्प मानता है। जिन्होंने अपने प्राणों को ही कृष्णमय बना लिया है। उनके लिए क्या कहा जा सकता है।

"ये कृष्णसात् कृतःप्राणैस्तेषां का परिदेवना।" (नवरत्न्–4)

हमारे शास्त्र कामनाओं को तीन भागों में विभक्त करते हैं। पुत्रैषणा, वित्तैषणा एवं लौकैषणा– पुत्र, वित्त (धन) एवं लोक की कामनाएँ हमें निरन्तर सताती रहती है। फलतः मनुष्य तनाव ग्रस्त, संत्रस्त रहता है। अतः हम ऐषणाओं को प्रभु को अर्पण करें त्वदीयं वस्तु गोविन्द। तुभ्यमेव समर्पये।" एवं प्रभु का सतत स्मरण करते हुए हमारे जीवन के प्रत्येक दैनिक कार्य प्रभु से जुड़े। हमें निश्चित होना चाहिए क्योंकि प्रभु सर्व समर्थ हैं–

"प्रभु सर्वसमर्थो हि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत। (चतुःश्लोकी–2)

श्रीमद् आचार्य चरण द्वारा रचित "विवेक धैर्याश्रयः" विवेक के माध्यम से तनाव मुक्ति के लिए रामबाण औषध है। आजीवन दुःखों को सहन करना ही धैर्य है। प्रभु में एक मात्र भरोसा, विश्वास एवं शरण होने से अभिमान एवं कामना जनित सभी दुःखों से निवृत्ति होती है। दीनता से पलायन उचित नहीं है :–

"न दैन्यं न पलायनम्"

श्रीमद्वल्लभाचार्य ने 'नवरत्न' की भी रचना की है। चिंता निवृत्ति में नवरत्न की महत्वपूर्ण भूमिका है। वार्ता साहित्य के आधार पर कहा गया है। गोविन्ददास दुबे ने इस ग्रन्थ के माध्यम से चिंतन और आचरण कर चिंताओं से छुटकारा प्राप्त किया था। नवरत्न में सभी ऐहिक कामनाओं को प्रभु को अर्पित किया गया है। विश्वास है, प्रभु सब निज इच्छा से करेंगे। प्रभु इच्छा ही बलवती है। प्रभु पुष्टिस्थ अनुग्रह परायण हैं। वे आत्म समर्पणरत जीवों के प्रति अत्यन्त कृपालु हैं। ऐसे समर्पित वैष्णव, जो प्रभु में अनन्य भक्ति एवं विश्वास रखते हैं, प्रभु उनको लौकिक गति से सुरक्षित रखते हैं।

भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीं च गतिम्। (नवरत्नम्–1)

चित्त के उद्वेग के कारणों को भी प्रभु की लीला स्वीकार करते हुए उद्वेग–तनाव से मुक्त हो जाते हैं। आत्मनिवेदन तथा "श्रीकृष्णःशरणं मम" अष्टाक्षर मंत्र का निरन्तर संकीर्तन जीवन को चिंतामुक्त बनाते हैं। आज के चरम भौतिकवाद में तनावग्रस्त रखने वाली मनुष्य की ऐषणाओं को प्रभु की राग–भोग–शृंगार सेवाओं द्वारा उनका उदात्तीकरण एवं दिशा परिवर्तन कर भगवत् मय बनाना, उनका रसमयी सेवा के माध्यम से प्रभु में विनियोग करना, पुष्टिमार्ग का उद्देश्य एवं वैशिष्ट्य है। पुष्टिमार्ग, सेवा की रसमय प्रणाली है, प्रभु के अनुग्रह का ऐसा अनूठा मार्ग है। जहां भक्त समर्पण और अनन्यता से प्रभु सेवा करता हुआ भगवत् लीला में अपना लय कर देता है, जो कैवल्य–मोक्ष से बढ़कर है।

"लीला एवं कैवल्यं जीवानां मुक्तिरूपं तत्र प्रवेशः परमामुक्तिरिति।"

(ब्रह्म सूत्र भाष्य)

।। जय श्रीकृष्ण ।।

विवेक धैर्य आश्रय

–श्री श्याम सुन्दर गिरनारा

साधन दशा में वैष्णवों का सम्पूर्ण ध्यान ब्रह्मसंबंध के भावार्थ पर रहना चाहिये। साधन दशा ही है, कितने वैष्णव सिद्ध हैं? सिद्ध भी उसका त्याग नहीं करते। महाप्रभुजी ने कहा है– "आत्मनिवेदन का स्मरण तादृशीजनों के साथ मिलकर करना चाहिये। इसका अर्थ है वे भी सतत आत्मनिवेदन का, ब्रह्मसंबंध का स्मरण करते रहते हैं। यही तो पुष्टिमार्ग का आधार है तथा सहायक है– विवेक धैर्य आश्रय।

ब्रह्मसंबंध में 'मेरा कुछ नहीं है' यह भाव मुख्य नहीं है अपितु मैं कुछ नहीं हूं– दासोऽहम् यह भाव मुख्य है। पुराने जमाने में दासों को खरीदा बेचा जाता था। मनुष्य होने पर भी उनका अपना कोई अधिकार नहीं था। जो खरीदे, जो बेचे वही मालिक। इसी तरह वैष्णवों का अपने पर, अपना कोई अधिकार नहीं है। महाप्रभुजी ने ठाकुरजी के हाथ में सौंप दिया कि प्रभु की सेवा करना। संसार में सारे लेन देन का आधार शरीर है। अब यह शरीर प्रभु की सेवा हेतु प्रभु को सौंप दिया गया। इस पर अब अपना अधिकार नहीं। आरंभ में वैष्णव को इस पृथकता का अभ्यास करना चाहिये। एक संत उपाय बताते हुए कहते हैं– ऐसा समझना चाहिये यह शरीर मेरे साथ है, मेरे संग है, यह अलग हैं, मैं अलग हूं। हम दोनों मित्र हैं तथा साथ साथ रहते हैं। भूख लगी है तो मेरे मित्र को लगी है जो शरीर है जो मेरे साथ है, प्यास लगी है तो मेरे संग जो मेरा मित्र है उसे लगी है उसे जल पिलाना चाहिये, भूख लगी है तो भोजन देना चाहिये, बीमार है तो दवा देनी चाहिये। वह हमारा मित्र हर समय हमारे साथ है। अब समझें दोनों मित्रों ने साथ साथ ब्रह्मसंबंध लिया है तो मेरे साथ रहने वाला शरीर प्रभु की कायिक सेवा करेगा, तनुजा सेवा, मेरी सेवा भाव से होगी। शरीर कर्म से जुड़ेगा मैं भाव से। अब एक बात और है संसार में जो कष्ट होता है, घटनाएं होती हैं वे शरीर के साथ होती है। अतः शरीर प्रभु का है ऐसा समझकर शरीर की रक्षा तो करनी चाहिये परन्तु उसके मान अपमान से प्रभावित नहीं होना चाहिये। शरीर अलग है, हम अलग हैं हम प्रभु के अंश हैं, हमारा मान अपमान संभव नहीं है। परन्तु जब हम अपने को अपना शरीर मान लेते हैं, एक रूप हो जाते हैं तब उसके कष्ट को हम अपना कष्ट मान लेते हैं और दुखी होते हैं। यह तादात्म्य ही हमारे तादृशी होने में रूकावट है। शरीर से तादात्म्य करके हम शरीर जैसे हो जाते हैं यही देहाध्यास है, प्रभु से अपने शाश्वत संबंध को पहचान कर हम तादृशी हो जाते हैं। तादात्म्य में अहंता ममता दृढ़ होती है, तादृशी होने पर अहंता ममता छूट जाती है। भक्त भी भगवान् जैसे होते हैं। कुंडली में वर कन्या

के गुणों को मिलाया जाता है उसी तरह यदि भक्त और भगवान् के गुणों को मिलाया जाय तो वे शत प्रतिशत मिलेंगे। कभी भक्त, भगवान् जैसा लगेगा, कभी भगवान् भक्त जैसे लगेंगे। भय, क्रोध, क्षोभ, दुख, शंका, आशा–निराशा सब हमारे भीतर से आते हैं, बाहर से नहीं, इसे जानना आसान नहीं हैं। सूक्ष्म अनुभूति से ही इसे जाना जा सकता है तब क्रोध आने पर बाहरी जगत् पर आक्रमण नहीं करेंगे, भय लगने पर बाहरी जगत् से पलायन नहीं करेंगे। बल्कि प्रभु की लीला दिखाई देगी जैसा कि गीता में प्रभु ने कहा है– 'नाना भाव मुझ ही से होते हैं। सबके हृदय प्रदेश में बैठा ईश्वर यंत्रारूढ़ की तरह सभी जीवों को घुमा रहा है। महाप्रभुजी कहते हैं– चित्त में उद्वेग हो तो उसे प्रभु की लीला समझकर तत्काल चिन्ता का त्याग करना चाहिये। पीड़ा का कारण चाहे कोई पीड़ादायक प्रतीत हो, चाहे पीड़ित लेकिन अगर हम उस पीड़ा को बिना विरोध स्वीकार करलें तो पीड़ादायक तथा पीड़ित दोनों कमजोर पड़ जाते हैं जो कि हमारा ही मन है, इस तरह यह स्वतंत्रता का मार्ग है।

क्या कारण है दूसरों का दोष देखने से उनमें दोष बढ़ता है तथा गुण देखने से गुण बढ़ता है? दोष प्रेमी को बताना चाहिये, अहंकारी को नहीं, अहंकारी का तो गुण देखना ही उसकी मुक्ति एवं समझदारी का मार्ग है।

वैष्णवों में कमी नहीं है, आपके विचारों में कमी है जब आप कमी वाले विचारों को निर्विरोध अपना लेते हैं तब आपका आत्म विभाजन तथा अंतर्विरोध समाप्त हो जाता है आपका स्वानुभव पूर्ण और अखंडित होता है वही लोगों के विचारों में परिवर्तन लाता है न कि स्थूल दोष दृष्टि।

संसार में जो संघर्ष है वह आंतरिक संघर्ष के कारण है यदि आंतरिक संघर्ष के स्थान पर शांति हो, विवेक धैर्याश्रय दृढ़ हो तो बाहरी संघर्ष हो ही नहीं सकता। आत्म निर्भरता या प्रभु निर्भरता उसी से आती है।

आत्मसंघर्ष मिटाने के लिये हम बाहरी जगत् पर निर्भर नहीं हो सकते। वह तो अपने विवेक धैर्य आश्रय से ही सिद्ध होगा। अतः वल्लभ आज्ञा करते हैं– वैष्णव अपने विवेक धैर्य आश्रय का रक्षण स्वयं करे। विवेक धैर्य सततं रक्षणीये तथाश्रयः। अच्छे बुरे भाव बाहर से आते हैं ऐसा मानने पर विवेक धैर्याश्रय रखना कठिन है, सब भीतर से आता है यह जानना बाह्य जग से मुक्ति है। मन सतत कुछ न कुछ भ्रम उत्पन्न करता रहता है इसीलिये विवेक धैर्याश्रय का सतत रक्षण जरूरी है।

।। जय श्रीकृष्ण।।

गंगावतरण

(ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष दशमी तिथि दिनांक 29 जून 10)

—श्री गोपालदास व. नीमा

श्रीमद् भागवत के पंचम स्कंधानुसार राजा बलि से तीन पग पृथ्वी नापने के समय भगवान् वामन का बायाँ चरण ब्रह्माड के ऊपर चला गया। वहाँ ब्रह्माजी के द्वारा भगवान् के पाद प्रक्षालन के बाद उनके कमंडलु में जो जल धारा स्थित थी; वह उनके चरण स्पर्श से पवित्र होकर ध्रुवलोक में गिरी और चार भागों में विभक्त हो गई— (1) सीता, (2) अलकनंदा (3) चक्षु (4) भद्रा। गंगा को कई नामों से पुकारा जाता है। ये विष्णु के चरण से निकली हैं इसलिए ''विष्णु पदी'' भागीरथ की तपस्या से उतरी हैं इसलिए ''भागीरथी'' जह्नु की कृपा से मुक्त हुई है इसलिए ''जाह्नवी'' और पृथ्वी पर उतरी है इसलिए ''गंगा'' कहलाती है। विष्णु के चरण से निकलने, ब्रह्मा के कमंडलु में रहने और शिव की जटा में प्रवाहित होने से ये गंगा ''त्रिपथगा'' हुई, इसीलिए इनका नाम ''सुरसरि'' हुआ। ''विष्णु पादाब्ज सम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनी। ब्रह्मद्रवेति विख्याते पापं में हर जाह्नवी।''

अष्टछाप के कवि ''नंददास'' ने पद में वर्णन किया है— राग—सारंग— ''आगे आगे भाज्यो जात भगीरथ को रथ पाछे पाछे आवत रंग भरी गंग। झलमलात अति उज्जवल जल ज्योति अब निरखत मानो सीस भरी मोतिन मंग।।१।। जहाँ परे हैं भूप कबके भस्म रूप ठौर—ठौर जागि उठे होत सलिल संग। ''नंददास'' मानो अग्नि के यंत्र छूटे ऐसे सुरपुर चले धरे दिव्य अंग।।२।। पुष्टि संप्रदाय में श्रीगंगा दशमी दशहरा श्रीयमुनाजी का उत्सव माने हैं। गंगा अपना नाम उच्चारण करने वालों के पापो का नाश करती हैं, दर्शन करने वालों का कल्याण करती हैं तथा स्नान पान करने वालों की सात पीढ़ियों तक को पवित्र करती हैं।

सर्व तीर्थमयी गङ्गा सर्वदेव मयो हरिः। (नृसिंह पुराण)

शास्त्रों में गंगा—सेवन की भी विधि का वर्णन है। गंगा स्नान के समय यह भावना बननी चाहिए कि हम साक्षात् नारायण के चरण कमलों से निःसृत अमृतमय ब्रह्मद्रव में अवगाहन कर रहे हैं। गंगा स्नान के पूर्व देह को अपने घर पर स्नान करने के बाद शुद्ध होकर जाना चाहिए। गंगा में दंत—धावन, वस्त्र प्रक्षालन न करते हुए गंगा जल का आचमन एवं गंगा की रज को मस्तक पर लगाना चाहिए, गंगा जल में देह को भी नहीं मलना एवं अपने परिधान को निचोड़ना भी नहीं चाहिए।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

ज्येष्ठाभिषेक (स्नान–यात्रा) : भाव विश्लेषण

–श्री ब्रजभूषण भट्ट, प्रधान उपाध्याय

प्रायः सभी पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में ज्येष्ठ शुक्ल की पूर्णिमा को स्नान–यात्रा (ज्येष्ठाभिषेक) का उत्सव पूर्ण उत्साह से आयोजित किया जाता है। एक दिन पूर्व चतुर्दशी को जल का अधिवासन कार्य सम्पन्न किया जाता है। जल में केसर, अरगजा, रायबेल की कली, तुलसी, गुलाब की पंखुड़ियाँ आदि सुगन्धित वस्तुएँ पधराई जाती हैं। दूसरे दिन पूर्णिमा को ज्येष्ठा नक्षत्र में विभिन्न विग्रहों (स्परुपों) को उस जल से अभिषेक कराया जाता है। अभिषेक के समय 'सुवर्ण धर्मानुवाक पुरुष सूक्त' का पाठ ब्राह्मणों द्वारा किया जाता है। श्रीनाथजी के मन्दिर में भी इसी क्रम का अनुपालन किया जाता है तथा श्रीनाथजी प्रभु को सवा लाख आमों का भोग भी लगाया जाता है। ऋतु परिवर्तन के अनुसार शीतलता की दृष्टि से श्रीजी बाबा को वस्त्र शृंगार आदि धराये जाते हैं। अधिवासन के समय यमुनाष्टक का पाठ अनवरत चलता रहता है। महामंत्र से तुलसी चरणारविन्द में समर्पित की जाती है। अधिवासन एवं ज्येष्ठाभिषेक के समय संकल्प का भी विधान है।

ज्येष्ठाभिषेक (स्नान यात्रा उत्सव) की भाव–भावना में कोई ब्रजभक्त की मनोकामना को पूर्ण करने का अभिप्राय दृष्टि गोचर होता है। ब्रजभक्तों में कोई ज्येष्ठ भक्त थे, उनकी प्रभु के संग जल क्रीड़ा करने की इच्छा थी, उसे प्रभु ने पूर्ण किया। भक्तों के मन का आशय जानकर प्रभु ने भक्तों के संग श्रीयमुनाजी में जल क्रीड़ा व नाव मनोरथ किया। ज्येष्ठा नक्षत्र का आशय "श्रीकृष्ण चन्द्र रूपी नक्षत्र का ज्येष्ठ भक्त के संग जल क्रीड़ा–मनोरथ करना है"। इस भक्त भाव को चरितार्थ करने के लिए ज्येष्ठाभिषेक में ज्येष्ठा नक्षत्र एवं ज्येष्ठ मास को स्वीकार किया गया है। और श्रीआचार्य महाप्रभुजी की आज्ञा से एक दिन पूर्व अधिवासन करने में श्रीयमुनाजी के रसात्मक जल से क्रीड़ा करने का अभिप्राय निहित है। शंख से स्नान कराने में भी भाव–भावना आधिदैविक छिपी है। शंख भगवदायुध होने के साथ–साथ, पंच महाभूत में जल का आधिदैविक देव स्वरूप है। इससे शंख से ही स्नान कराया जाता है। श्रीप्रभु को अभिषेक के बाद चन्दन गोटी पाग पिछोरा आदि धराये जाते हैं। इसमें भी मुख्य भक्तों के श्रीअंग–वर्ण का भाव सन्निहित है। जिसे अंगीकार कर ताप निवृत्त करने का भाव है। भक्त भी सब मिलकर श्रीप्रभु ठाकुरजी को शीतल–सामग्री अरोगा कर उनका ताप–हरण करने का प्रयत्न करते हैं, साथ में स्वयं भी अधरामृत ग्रहण कर अपना ताप निवृत्त करते हैं। यह भाव–भावना ज्येष्ठाभिषेक स्नान–यात्रा के उत्सव में निहित है। जिससे यह उत्सव पूर्ण मनोयोग व समर्पित भावना से पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में मनाया जाता है।

शास्त्रोक्त–वैदिक दृष्टि से विचार करें, तो ज्येष्ठ शुक्ल दशमी एवं पूर्णिमा को व्रतादि दानादि एवं पवित्र नदियों (गंगा, यमुना, सरस्वती आदि) में स्नानादिक करने पर अश्वमेघ–यज्ञ का पुण्य फल प्राप्त होता है। दशमी को दशहरा भी कहते हैं, क्योंकि यह दस पापों का क्षरण–हरण करने वाली है। हेमाद्रिग्रंथों में ज्योतिष का कथन है कि ज्येष्ठ का बृहस्पति या चन्द्रमा पूर्णिमा को हो और रोहिणी नक्षत्र पर सूर्य हो, तो पूर्णिमा महाज्येष्ठी मानी जाती है, जिससे यह पूर्णिमा अत्यन्त पुण्य फलदायी है। ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त ज्येष्ठ शुक्ल की पूर्णिमा को तिल, छत्र, उपाहनादि दान करने से मनुष्य अधिपति राजा हो जाता है। जिससे इस तिथि को अत्यन्त पुण्यदायी माना गया है। यदि इस तिथि को ज्येष्ठाभिषेक–उपनिषद के पाठ के समय तक श्रीप्रभु श्रीजी बाबा व अन्य विग्रहों का अभिषेक कराया जाता है, तो समस्त जन–जन को खुशहाली–मंगलमयी जीवन की प्राप्ति होती है। ऐसी मान्यता है। किमधिकम्।।शुभम्।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

महाप्रभु की कृपा से हुई सिद्ध, अभिनव स्पर्द्धाएं

—दयाशंकर पालीवाल

विज्ञान का प्रतिभावान विद्यार्थी श्रीमद्वल्लभाचार्यजी (महाप्रभु) के प्राकट्य, प्रतिभा, कृष्णमय जीवन, वस्तुतः कृष्णएव और विलक्षण व्यक्तित्व पर भावपूर्ण विचार व्यक्त कर रहा था। श्रीमद्भागवत के गोपीगीत और युगलगीत का गान करते हुए, प्रभु श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए गंगाजी में प्रवेश और अन्तर्धान होने तथा एक तेज पुंज के अनन्त आकाश में विलीन होने (असुर व्यामोह लीला) का अत्यन्त भावुकता से वर्णण करते हुए प्रवचन करता विद्यार्थी फफक—फफक कर रो पड़ा। सभी श्रोताओं के नयनों से अश्रुधारायें बहने लगी। माहोल गमगीन हो गया। समय जैसे रूक सा गया। चार मिनट की समाधि लग गई। प्रवचनकर्ता को माइक से हटाकर प्यार से बिठाया। रूदन था कि रूकने का नाम ही नहीं ले रहा। संयोजक ने भी अपने को संयमित कर अगले संभागी को विचार अभिव्यक्ति के लिए आमन्त्रित किया। उसने भी भावपूर्ण अभिव्यक्ति से सभी का ह्रदय द्रवित कर नयन सजल कर दिये। लगा.........साक्षात् महाप्रभु ने स्वयं उपस्थित हो स्पर्द्धा को सिद्ध कर दिया हो। यह घटना घटी श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के 533 वें प्राकट्य महोत्सव के उपलक्ष्य में आयोजित प्रवचन स्पर्द्धा के अवसर पर।

पिछले कुछ वर्षो से पूज्यपाद ति. श्रीराकेशजी महाराजश्री की आज्ञा एवं चि. गो. श्रीविशाल बावा सा. की अनुमति से पुष्टि प्रसार प्रकोष्ठ द्वारा श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के प्राकट्य महोत्सव के उपलक्ष्य में जन जन के मन में पुष्टिभाव प्रसारार्थ विविध वर्गों में विभिन्न विषयों में स्पर्द्धाएं आयोजित की जा रही है। उनके सुखद परिणाम प्राप्त होने लगे हैं और विभिन्न क्षेत्र की प्रतिभाएं पुष्टि—भावों से जुड़ने लगी है। अकादमिक प्रतिभाएं अपने लौकिक जीवन में उच्चस्थ पदों पर पहुँचेगी इसमें तनिक भी संशय नहीं किन्तु इन अभिनव प्रयोगात्मक पहल से वे प्रभु कृपा से जीवन भर पुष्टिभावों से संयुक्त रहेगी। वे यदि विदेश में भी जायेगी तो भी यमुनाष्टक का गान और सर्वोत्तम स्तोत्र पाठ तथा पुष्टि साहित्य के अध्ययन में एवं महाप्रभु और प्रभु श्रीनाथजी के ध्यान में निमग्न रहकर भगवदर्थ अपने दायित्वों का निर्वहन करेगी।

एक मनोवैज्ञानिक तथ्य जो सत्य भी है कि जिन जीवों के रगों में आध्यात्मिक 'जीन्स' होते है। वे वातावरण मिलते ही सहजता से आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित हो जाते हैं। इसी बिन्दु को ध्यान में रख कर पुष्टिमार्ग की प्रधानपीठ नाथद्वारा में पुष्टिमार्गीय स्पर्द्धाओं का आयोजन किया जाता है। ये स्पर्द्धाएं स्पर्द्धा न होकर सत्संग

स्वरूप धारण कर लेती है। यह एक अभिनव (नवाचार युक्त) प्रयोगात्मक पहल **(innovative Experimental Approach)** है जिससे विविध वर्गो और विभिन्न विषयों की विलक्षण प्रतिभाएं खिंची चली आती है। चित्रांकन विषय की एक वर्ग की एक प्रतिभा का एक चित्र इस अंक के मुख पृष्ठ पर अंकित है। श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के प्राकट्य महोत्सव की थीम "महाप्रभुजी" रखते हुए अग्रांकित पांच दिवसीय महाप्रभु–विषयक स्पर्द्धाएं आयोजित होती है– 1. चित्रांकन 2. भजन–संगीत 3. हवेली–संगीत 4. प्रवचन और 5. आलेख–वाचन (पेपर रिडींग)।

ये चार वर्गो– 1. कनिष्ठ वर्ग (कक्षा 8 तक के विद्यार्थियों के लिए) 2. वरिष्ठ वर्ग (कक्षा 9 से 12 तक के विद्यार्थियों के लिए) 3. महाविद्यालय वर्ग (कोलेज एवं युनिवर्सीटी के विद्यार्थियों के लिए और 4. शैक्षणेत्तर आमजनों के लिए। इसका विभिन्न शिक्षण संस्थानों और आम लोगों में व्यापक प्रचार प्रसार किया जाता है ताकि संभागीत्व में अच्छी अभिवृद्धि हो। संभाग व राज्य स्तर के प्रतिभागी इनमें उत्साह से भाग लेते है और सफल संभागियों को मन्दिर मण्डल द्वारा आकर्षक पुरूष्कार, प्रमाण पत्र और पूज्य तिलकायत महाराजश्री एवं चि. गो. श्रीविशाल बावा सा. का आशीर्वाद भी प्राप्त होता है। प्रत्येक स्पर्द्धा में विशेषज्ञों, निर्णायकों एवं सहयोगी महानुभावों का पूज्य महाराजश्री द्वारा सम्मान किया जाता है। स्पर्द्धाएं उत्तरोत्तर उत्तम अवस्था को प्राप्त होती जा रही है क्योंकि इसमें दूरस्थ स्थानों, विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्व विद्यालयों, तकनिकी व अकादमिक संस्थानों के संभागी और आम जन उच्च स्तरीय तैयारी के साथ भाग लेकर हृदय–स्पर्शी प्रस्तुती देते हैं जिसका आनन्द पुष्टि–भक्त अच्छी संख्या में उपस्थित होकर लेते हैं। वरूथिनी एकादशी (श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के प्राकट्य दिवस) से एक दिन पूर्व से त्रिदिवसीय भव्य प्रदर्शनी का आयोजन मोतीमहल चौक में किया जाता है जिसमें महाप्रभुजी की 84 बैठकों के विवरण सहित दिव्य चित्रों, अन्य अनूठे प्रसंगों के चित्रों, पुष्टि साहित्य व सम्बंधित बेनरों एवं प्रादर्शों के दर्शन कर हजारो वैष्णव धन्य होते है। वरूथिनी एकादशी को सायं महाप्रभुजी की दिव्य छवि को सुखपाल में पधराकर गोविंद पल्टन व 25 वर्षों से अनवरत श्रीजी मन्दिर की प्रातःकाल परिक्रमा करने वाली श्रीजी–शंखनाद–कीर्तन मण्डली सहित भव्य शोभा यात्रा निकलती है, जिसमें हजारों श्रद्धालु सम्मिलित होकर भक्ति–रस का आनन्द लेते है।

परमपिता परमेश्वर प्रभु श्रीनाथजी से प्रार्थना है कि इन नवाचार युक्त पुष्टिमार्गीय स्पर्द्धाओं के प्रयोगात्मक पहल से जीवों का अधिकाधिक जुड़ाव होता रहे ताकि पुष्टि–भक्ति का प्रांकुर प्रस्फुटित, पल्लवित व पुष्पित होकर भगवद् अनुग्रह की प्राप्ति हो सके।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

"प्रभु श्रीनाथजी की परम भक्त ताजबेगम।"

–श्री हरिनारायण नीमा, उज्जैन

जगद्गुरु महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य का 'पुष्टिमार्ग' भगवद् शरणागति का मार्ग है, यहां भगवान की कृपा अथवा अनुग्रह ही नियामक है। आचार्य वाणी है–

"सदा सर्वात्मना सेव्यो भगवान् गोकुलेश्वरः। स्मर्तर्व्यागोपिकावृन्दै क्रीड़न वृन्दावने स्थितः।।"

गोकुलेश्वर ब्रजेन्द्र कुल चन्द्र प्रभु श्रीनाथजी की सेवा सर्वात्मभाव से पुष्टिमार्ग में की जाती है। शरणागत वत्सल वृन्दावनेश्वर प्रभु भक्तों द्वारा समर्पित पत्र, फल, पुष्प स्वीकार करते हैं। परम दयामय– राई जितनी सेवा को मरू के समान मानते हैं। चाहिये जीव की मनोगत श्रद्धा और निष्ठा।

सहज ह्रदय से प्रभु चरणों में आत्म निवेदन करने वालों के लिये पुष्टिमार्ग का राजद्वार सबके लिये खुला है। आचार्य वल्लभ एवं आपश्री के द्वितीय पुत्र गो. श्रीविट्ठलनाथजी प्रभुचरण के द्वारा बनाये गये तीन सौ छत्तीस परम भक्तों में ताजबेगम भी आती हैं। मुगल बादशाह अकबर की बेगम थी ताज। ताज को रनिवास का परिवेश अच्छा नहीं लगता था, वह अकबर बादशाह की चहेती थी किन्तु सदैव मुरझाईसी रहती थी। 'हरम' में बीरबल और राय वृन्द की बेटियों से ताज की मुलाकात हुई, उसने अपनी मनोव्यथा उन्हें बतलाई और गोवर्धनधारी कन्हैया के दर्शनों की चाह प्रकट की। वस्तुतः ताज के ह्रदय में कृष्ण भक्ति तरंगायित थी, वह अपने दिल की कहानी उनके समक्ष प्रकट करना चाहती थी। दोनों सखियों ने प्रभु चरण गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी से श्री गोकुल में मिलने की राय दी, ताजबेगम ने बादशाह के समक्ष अपनी मंशा प्रकट की, अकबर ने सहर्ष स्वीकृति दे दी और दिल्ली से गोकुल जाने की समूची व्यवस्था के निर्देश दिये। डोले में बैठकर ताजबेगम अंगरक्षक घुड़सवारों के साथ गोकुल आई, श्रीगुसाँईजी यमुनातट पर संध्यावंदन कर रहे थे, आपश्री के चरणों में ताज नत हुई और जीवन मे घटी घटनाओं की व्यथा प्रकट की। उसने स्पष्ट कर दिया कि वह बादशाह अकबर की स्वीकृति से आई है और भगवान् श्रीनाथजी के दर्शन को उत्सुक है, बेगम की स्पष्ट वादिता और भक्ति भाव के मद्देनजर श्रीगुसांईजी ने गोपालपुर (गोवर्धन) स्थित मंदिर में विराजित प्रभु श्रीनाथजी के दर्शन कराये।

पराकाष्ठा थी आज ताज का सौभाग्य सूर्य स्वर्ण रश्मि विखेर रहा था, नीलमणि दर्शन से उसके मन, प्राण प्रफुल्लित थे, उसका "सांवरा सलोना–सरताज" ह्रदय मन्दिर में विराज गया था। निर्मल ह्रदया ताज ने सेवा पधराने के लिये श्रीगुसाँईजी महाराज से निवेदन किया, ताज की पात्रता को देखकर आपश्री ने 'ब्रह्मसम्बंध' दीक्षा देकर उसे सेवक बनाया।

उल्लेखनीय है कि पुष्टिमार्ग में आचार्य और स्ववंश शिष्य नहीं बनाते, वे प्रभु के सेवक बनाते हैं। जब महाभाग्यवान ताज सेवक बन गई तब सेवार्थ निवेदन किया। 'दो सौ बावन वैष्णवों' की वार्ता में उल्लेख प्राप्त होता है कि आचार्यश्री ने ताज को श्रीललित त्रिभंगरायजी ठाकुरजी सेवा हेतु पधराये।

ताज ने भक्ति भाव से अपने सेव्य प्रभु की वर्षों सेवा की, वर्तमान में श्री ललित त्रिभंगरायजी ठाकुरजी पोरबंदर (गुजरात) स्थित श्रीरणछोड़जी की हवेली में विराजित हैं। महाभाग्यवान तादृशी–ताज गिरिराज मंदिर में श्रीनाथजी के दर्शनों को भी आती थी। प्रभु की विश्वमोहिनी छवि उसके ह्रदय सिंहासन पर बिराज गई थी, उसके मनोरथ से श्रीगुसांईजी ने ब्रजराज कुंवर प्रभु श्रीनाथजी के शृंगार में 'सूथन पटका' की अंगीकारी करवाई थी जो वर्तमान में भी वर्ष के कुछ महीनों के निश्चित दिनों में छः वार श्रीजी को धराये जाते हैं। परम प्रेम के परिचायक हैं सूथन पटका के ये शृंगार।

ताज द्वारा रचित पदों का गान भी श्रीजी के सन्मुख होता है। फागुन मास के रंग रंगीले दिनों में रागनट में गाई जाने वाली धमार अति प्रसिद्ध है।

"बहोरि ढफ बाजन लागे हेली।
खेलत मोहन सांवरो किहिं मिस देखन जांय,
सास–ननद बैरिन भई अब कीजै कौन उपाय,
ओचक गागर ढोरियो जमुना जल के काज
यह मिस बाहर निकस के हम जाय मिले तजि लाज।
आओ बछरा मे लिये वन को देहि विडार।
वे देहें हम ही पढे, हम रहेंगी घटी द्वै–चार।
हा–हारी हों जात हीं मोपे नाहिन परत रहयो।
तू तो सोचत ही रही ते मान्यो न मेरो कहयो।

रागरंग गृह–गृह मच्यो नन्दराय दरबार। गाय खेलि हँसि लीजिये फाग बड़ी त्यौहार। तिन में मोहन अति बने नाचत सबे गुवाल। बाजे बहु विध बाजही संज–मुरज–ढफ–ताल। मुरली मुकुट बिराज ही कटि पट बांधे पीत। नृत्यत आवत 'ताज' के प्रभु गावत होरी गीत।

अलावा इसके अनेक पद ताज रचित उपलब्ध हैं। प्रत्येक पद भक्ति रस से सराबोर तो हैं ही ताज के अन्तर्मन से निःसृत अपने 'दिलजानी साहिब' के प्रति समर्पण की पराकाष्ठा के परिचायक भी है। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

प्रेम–ऐश्वर्य निरूपण

–प्रो. श्रीललितशंकर शर्मा (काव्यखण्ड से साभार)

प्रेम का ऐश्वर्य शाश्वत रम्य मन भावन सदा।
शासक नहीं कोई यहाँ आनन्द शासित सर्वदा।।
स्वत्व ममता मोह से वैभव यहाँ दूषित सदा।
प्रेम का ऐश्वर्य रुचिकर त्याग संयुत सर्वदा।।
सत्वगुण अभिवृद्धि करता प्रेम का ऐश्वर्य है।
अपना पराया ही सिखाता जगत का ऐश्वर्य है।।
वैभव प्रभु का मान सेवा सेव्य को अर्पण करे।
पुष्टिवर्द्धन बन कृपालु नित्य ही पोषण करे।।

भावार्थ :– संसार का समस्त वैभव क्षण भंगुर एवं नश्वर है किन्तु प्रेम का ऐश्वर्य शाश्वत, रमणीय, मन को प्रिय लगने वाला एवं रुचिकर है। प्रेम के साम्राज्य में व्यक्तिगत अहंकार का शासन नहीं है। यह साम्राज्य नहीं है। यह साम्राज्य तो सदैव आनन्द के द्वारा ही शासित है। जगत् का वैभव मनुष्य की अधिकार वृत्ति, ममत्व एवं आसक्ति के कारण सदैव दूषित रहता है।

प्रेम का ऐश्वर्य सदैव सतोगुण की अभिवृद्धि कर मुनष्य की आत्मा को पुष्ट करने वाला है। इसके विपरीत संसार का वैभव अपने एवं पराये का भेद भाव पैदा कर क्लेश उत्पन्न करने वाला है। जो व्यक्ति सांसारिक वैभव, धन, सम्पत्ति आदि सभी साधनों को प्रभु का ही मानकर उनको अपने सेव्य प्रभु की सेवा में अर्पित कर देता है तो पुष्टिवर्द्धन–स्वरूप परमात्मा उससे संतुष्ट होकर उस पर कृपालु बन उसके योग–क्षेम को स्वयं वहन करते रहते हैं।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

पुष्टिमार्ग के मन्दिरों में आशौच–विचार

श्री ब्रजभूषण भट्ट, प्रधान उपाध्याय श्रीनाथजी मंदिर नाथद्वारा

(गतांक से आगे.....)

(जनन-आशौच)

पूर्व प्रकाशन में सामान्य (प्रकीर्ण) आशौच पर विचार प्रकट किये गये। अब जनन–आशौच के सम्बन्ध में विचार प्रकट किये जा रहे हैं। यह तो सर्वविदित है कि आशौच–काल को सेवा के योग्य नहीं माना जाता है, आशौच को अपवित्रता के रूप में जाना जाता है। और यह अपवित्रता प्रायः दो प्रकार की होती है:–

1. बाह्य–अपवित्रता (अशुद्धि)
2. आन्तरिक अपवित्रता (अशुद्धि)

बाह्य अपवित्रता को सामान्यतः स्नान, नवीन–वस्त्र धारण, मार्जन, मृतिका–स्नान, भस्म–स्नान, गोमय स्नान, गोमूत्र–स्नान और सूर्यादि दर्शन से दूर किया जाता है। आन्तरिक अपवित्रता आचमन, पंचगव्य–प्राशन, चरणामृत–पेड़ा–प्राशन, तुलसीदल ग्रहण करना, यज्ञ–भस्म–प्राशन एवं प्रायश्चित–संकल्प से परिहार की जाती है। आशौच–निवृत्ति के बाद जनेऊ कण्ठी भी बदली जाती है। जीवनचर्य्या में यात्रादि में स्पर्शास्पर्श, उपवास, पीतापीत, भक्ष्याभक्ष्य दोष आना स्वाभाविक है। इसे प्रायश्चित आदि से दूर किया जाता है।

जनन–आशौच में प्रायः स्पर्शा स्पर्श दोष नहीं माना जाता है जबकि मरण–आशौच में स्पर्शा स्पर्श दोष माना जाता है। जब तक जनन–आशौच में मंगल–स्नान नहीं हो जाता है, तब तक स्पर्शा स्पर्श दोष रहता है। जनन–आशौच को पिण्डू के नाम से सम्बोधित करते हैं। जनन–आशौच में सामान्यतः दर्शन बाहर से करने में प्रतिबन्ध नहीं है। देव–कार्य, श्राद्ध आदि करना निषिद्ध है। संध्यादि भी अर्घ्यान्त तक मानसी की जाती है। यदि बालक मरा (मृत्यु) उत्पन्न हो, तो आशौच जनन आशौच के रूप में ही माना जाता है। और यदि जन्म के बाद बालक मर जाये, तो भी जनन–आशौच माना जाता है। पुत्र जन्म पर प्रसूति माता को आशौच–अवधि के अतिरिक्त 20 दिन तक देव–पितृ–कार्य का अधिकार नहीं है और पुत्री (कन्या) जन्म पर प्रसूति माता को

आशौच–अवधि के अतिरिक्त एक माह (30 दिन) तक देव–पितृ–कार्य निषिद्ध है। सपिण्डों (सात पीढ़ी तक) को भी जनन–आशौच–अवधि तक देव–पितृ–कार्य का अधिकार नहीं है। जनन–आशौच अवधि में अन्य को भी देव–पितृ–कार्य निषिद्ध है।

चतुर्थमास तक यदि बालक गिर जाए तो उसे गर्भ–स्त्राव कहते हैं। और यदि बालक पंचम व षष्ठ माह में गिर जाय, तो उसे गर्भपात कहते हैं। इसके आगे प्रसव कहलाता है। मूल पुरुष से सात पीढ़ी तक बन्धुओं को सपिण्डी कहा जाता है। आठ पीढ़ी से चौदह पीढ़ी तक के बन्धुओं को समानोदक कहते हैं तथा पन्द्रह पीढ़ी से इक्कीस (22) पीढ़ी तक के बन्धुओं को सगोत्री कहते हैं। हिन्दू समाज पुरुष प्रधान समाज है, न कि स्त्री प्रधान समाज, जिससे पुरुष के अनुसार ही स्त्री का भी आशौच माना जाता है।

जनन–आशौच में भी अर्घ्यान्त तक मानसी सन्ध्या करनी चाहिए, प्राणायाम्य, गायत्री–मंत्र जप, सूर्योपस्थानादि नहीं। अर्घ्य प्रदान के समय गायत्री–मंत्र मन में ही उच्चारण करें। और मार्जन, मंत्राचमन, अघमर्षण–मंत्र भी मन ही मन में बोलें। अन्त में चतुःसागर॰ एवं यस्य स्मृत्या॰ आदि मंत्रों से समाप्त करें। हवनादि भी नहीं करें। ब्रह्मचारी यदि उस समय आशौच (मरण) का अनुपालन नहीं करे, तो समावर्त्तन के समय पितृ–मरण–आशौच का पालन करना अभीष्ट है। जननाशौच के बाद भी कण्ठी जनेऊ बदलना चाहिए। घर में सब जगह शुद्धि करें।

बालक या बालिका के जन्म पर सुवासड़ी के कोठा में अष्टदल, हल्दी (पिसी) से बनवाकर जौ (यव) की ढेरी पर मिट्टी का कलश जल से भरवाकर ऐवाती से धरवा दें तथा कलश में मुख पर श्रीफल (नारियल) धरवा दें। ऐवाती रोज यवों पर जल छिड़कती रहे। अपने घर जाति के अनुसार परम्परा का निर्वाह करें। पिता, मंगल स्नान के पूर्व जन्मे पुत्र या पुत्री के नाड़ा काटने के स्थान पर अपना एक जनेऊ ऊँचे से रखदे और पुत्र–पुत्री के सिर को दूर से सूँधकर मंगल स्नान के लिए प्रस्थान करे। मंगल स्नान में सजातीय बन्धुओं के साथ, गाजा–बाजा सहित पवित्र नदी (गंगा, यमुना आदि) या जलाशय पर जाना चाहिए। पहिले पूजनादि कर फिर स्नान करना चाहिए। फिर जाति, समाज की जो परम्परा हो उसके अनुसार अनुसरण करें। घर आकर आरती मंत्राक्षता,

तिलकादि होय, स्वस्ति पुण्याह–वाचन नहीं होय। फिर षष्ठ दिवस षष्ठी–पूजन होय, इसमें भी पुण्याहवाचन नहीं होय। फिर अपनी जाति, वर्ण व घर की परम्परा के अनुसार , अनुपालन करें।

आशौच–विचार में बीजात्मक रक्त सम्बन्ध (कुल–सम्बन्ध) एवं अन्य सम्बन्ध विचारणीय हैं। जैसे जैसे रक्त सम्बन्ध कम (दूर) होता जाता है वैसे वैसे आशौच भी प्रायः कम होता जाता है। पीढ़ी बढ़ने पर आशौच अल्प होता जाता है। अन्य सम्बन्ध में आत्म बन्धु, पितृ बन्धु, मातृ बन्धु, गुरु–शिष्य–सम्बन्ध, सहपाठी, मित्र–गण आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं। अन्य सम्बन्ध जननाशौच में कम विचारणीय है। जबकि मरणाशौच में अधिक विचारणीय है।

सन्निपात–आशौच वह आशौच है, जिसमें पहिले आशौच की अवधि समाप्त नहीं होय और दूसरी आशौच आजाय। पहिले में दूसरा आशौच आजाए।

अतिक्रान्त आशौच में अवधि समाप्त होने के बाद आशौच, जानकारी में या सुनने में आये।

अनुगमन में शव के पीछे श्मशान तक जायें उसे अनुगमन कहते हैं।

देशाचार–लोकाचार निवास–स्थान के रिवाजों को कहते हैं। जिनका अनुपालन प्रायः सबको करना चाहिये।

पक्षिणी–अवधि एक दिन और दो रात्रि या दो दिन और एक रात्रि को कहते हैं।

भिन्न–पितृक में माता तो एक होय और पिता दूसरो भिन्न होय। दो पिता हो जायें। सापत्य–माता दूसरी सौत माता होती है। अनौरस दत्तक व कृत्रिम प्रभृति के पुत्र व अन्य सम्बन्ध व्यक्ति को मानते हैं।

सच्छूद, गुवारिया, नाई, वैश्य–कर्म–वृत्ति करने वालों को कहते हैं।

जनन–आशौच का विस्तृत उल्लेख करने की जगह संक्षिप्त सारिणी निर्मित की गयी है। जिसमें यथा सम्भव समस्त जनन–आशौच को सम्मिलित किया गया है। फिर भी यदि कोई विवादास्पद बात हो तो मन्दिर के मान्य उपाध्यायजी एवं पण्ड्याजी का निर्णय ही सर्वोपरि मान्य किया जाये। विभिन्न ग्रन्थों, विचारिकों, ऋषियों के मतों का भी अवगाहन किया जाये। मरण–आशौच (सूतक) अन्य प्रकाशनों में प्रकाशित करने का प्रयास करेंगे। किमधिकम्। शुभम। (क्रमशः.........)

।। जय श्रीकृष्ण ।।

श्रीजी की कृपा प्राप्ति वैष्णव एवं गुरू माध्यम से

–श्रीप्यारेलाल पारिख

वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीनाथजी की प्राप्ति वैष्णव एवं श्रीमहाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी एवं श्रीगुसांईजी के बिना संभव नहीं है। श्रीनाथजी उसे ही स्वीकार या शरण में लेते हैं जो वैष्णव के द्वारा गुरू के पास आता है एवं गुरू ही श्रीनाथजी एवं हमारे मध्य ब्रह्म संबंध कराते हैं। हम गुरु के माध्यम से ही श्रीनाथजी की शरण में जा सकते हैं या यूं कह सकते हैं कि श्रीजी उन्हे ही शरण में लेते हैं जो इस कड़ी द्वारा आता है। मैने अपने जीवन में ऐसे कई प्रसंग देखें जो सीधे ही श्रीजी शरण में जाना चाहते हैं पर श्रीजी उन्हें शरण में नहीं लेते हैं। ऐसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता हैं। मैं यहां सिर्फ दो प्रसंगो का वर्णन करना चाहता हूं। प्रथम परमानन्ददास स्वामी का एवं दूसरा रसखान सैयद पठान का।

हम सब जानते हैं कि परमानन्ददास स्वामी कहलाते थे एवं आप सेवा करते थे। वे गायन में निपुण थे एवं गाते भी बहुत अच्छा थे। एक बार परमानन्द स्वामी प्रयाग पधारे। वे कीर्तन बहुत अच्छा करते थे एवं दूर–दूर से कीर्तन सुनने के लिए लोग आया करते थे। ठाकुरजी का एक जलघरिया कपूर खत्री उनके कीर्तन पर बहुत आशक्त था। एक दिन एकादशी के दिन प्रयाग में श्रीयमुनाजी के तट पर रात्रि जागरण का कार्यक्रम था। जलघरिया कपूरखत्री सेवा से निवृत होकर रात्रि को तैर कर श्रीयमुनाजी पार कर प्रयाग आया एवं परमानन्द स्वामी के कीर्तन सुने। परमानन्द स्वामी ने कीर्तन करते समय श्रीनवनीत प्रियजी को जलघरिया की गोदी में बैठे एवं कीर्तन सुनते हुए देखा। प्रातःकाल होने से पूर्व जलघरिया श्रीयमुनाजी को तैर कर पार कर अडैल आ गया ताकि ठाकुरजी को एवं श्रीमहाप्रभुजी को कष्ट व श्रम न पड़े। परमानन्द स्वामी को ज्ञात था कि ठाकुरजी की कृपा श्रीआचार्य महाप्रभुजी के बिना संभव नहीं है। रात्रि में परमानन्द स्वामी ने निद्रा में देखा कि श्रीनवनीत प्रियजी जलघरिया की गोद में बैठकर कीर्तन सुन रहे है। उन्हें इतना आनन्द और सुख हुआ एवं मन में विचारा कि यह दर्शन उस सेवक (वैष्णव) जलघरिया के बिना नहीं हो सकते थे।

परमानन्द स्वामी प्रातः प्रयाग से अडेल की ओर यह सोचकर चले कि जलघरिया से मिलकर श्रीमहाप्रभुजी के दर्शन करूंगा। अडेल पहुंचने पर परमानन्दन स्वामी को श्रीयमुनाजी के तट पर श्रीआचार्यजी महाप्रभुजी के दर्शन हुए। परमानन्द स्वामी को पूर्ण पुरूषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन हुए। श्रीगुसांईजी ने वल्लभाष्टक मे लिखा कि "सोवस्तुतः कृष्ण एवच"। मेरा कहने का अर्थ यह है कि परमानन्द स्वामी को ठाकुरजी ने शरण में तब ही लिया जब वह जलघरिया के माध्यम से श्रीमहाप्रभुजी की शरण में आये। हम सब जानते हैं कि परमानन्द स्वामी अष्टछाप के सखा हुए एवं अपने कीर्तन द्वारा श्रीठाकुरजी, श्रीमहाप्रभुजी एवं श्रीगुसांईजी को बहुत सुख और प्रसन्नता दी। ठाकुरजी उन पर कितनी कृपा एवं अनुग्रह करते थे यह हम सभी को मालुम है।

दूसरा प्रसंग जिसका मैं यहां वर्णन करने जा रहा हूं वह रसखान सैयद पठान का है। हम सब जानते हैं कि रसखान एक साहूकार के बेटे पर बहुत आशक्ति रखते थे। यहां तक कि वह

उसका झूठा भोजन एवं पानी तक पीते थे। उन्हें श्रीजी की शरण में लेना था। अतः एक बार दो वैष्णव आपस में बात करते हुए रसखान के पास से गुजर रहे थे। रसखान ने उनकी बात सुनी एवं उसे लगा कि यह दोनों उस पर हंस रहे हैं। रसखान ने उन दोनों को कहा कि तुम मुझ पर क्यों हंस रहे हो बताओ अन्यथा में तुम्हें मारूंगा। तब उन दोनों वैष्णवों ने बताया कि जिस प्रकार की आशक्ति तुम्हारी उस लड़के के प्रति है ऐसी प्रभु में लगाओ तो तुम्हारा काम हो जाएगा। रसखान ने पूछा कि तुम किस प्रभु की बात कर रहे हो। तब उन वैष्णवों ने अपनी पगड़ी से श्रीनाथजी के चित्र को निकालकर दर्शन कराये। हम सभी जानते हैं उस चित्र में मुकुट काछनी का शृंगार था। श्रीनाथजी के दर्शन करते ही रसखान का उस लड़के से मोह छूट गया एवं आंखों से जलधारा फूट पड़ी। वैष्णवों से महबूब का पता ज्ञात कर ब्रज की और चल पड़े। रास्ते में सभी मन्दिरों में दर्शन करते हुए अन्त में श्रीगोवर्धन पर्वत पर आये और ऊपर चढ़ने लगे तो उन्हें लोगों ने रोक दिया। रसखान को विश्वास हो गया कि मेरा महबूब यहीं रहता है। रसखान गोविन्द कुण्ड पर आकर बैठ गये एवं श्रीनाथजी के मन्दिर की ओर टक टकी लगाकर देखने लगे। इस प्रकार तीन दिन तक भूखे प्यासे बैठे रहे एवं उन्हें किसी प्रकार की सुध नहीं रही। यह दशा देखकर दया निधान, परम कृपालु एवं भक्तों को शरण में लेने वाले श्रीनाथजी के मन में दया आयी। उसी समय श्रीनाथजी ने अपने शृंगार को वड़ा किया एवं मुकुट काछनी का शृंगार धराया और गोवर्धन के शिखर पर चढ़कर वैणुनाद किया एवं रसखान को दर्शन दिये। रसखान को विश्वास हो गया कि मेरा महबूब यही है। रसखान ठाकुरजी को पकड़ने दौड़ा पर ठाकुरजी अन्तर ध्यान हो गये। श्रीनाथजी उसे स्वीकार कर सकते थे पर अभी कड़ी पूर्ण नही हुई थी। श्रीनाथजी को रसखान को श्रीगुसांईजी के द्वारा शरण में लेना था। उन दिनों श्रीगुसांईजी श्रीगोकुल में नवनीत प्रियजी के पास प्रवास कर रहे थे। श्रीनाथजी आप स्वयं श्रीगोकुल पधारे एवं पोढ़े हुए श्रीगुसांई के मस्तक पर हाथ फेरकर जगाया और सब बात विस्तार से बताई एवं निवेदन किया कि आप श्रीगोवर्धन पर्वत पर पधारे और रसखान को नाम निवेदन एवं ब्रह्म संबंध करायें। तब मैं उसे अपनी शरण में लूंगा। श्रीगुसांईजी ने पूछा बाबा आप भागकर क्यों आये। श्रीनाथजी ने निवेदन किया कि मेरी तो यह प्रतिज्ञा है कि जीव आप द्वारा मेरे पास आयेगा उनसे ही बोलुंगा, उसको स्पर्श करूंगा एवं उनके हाथ से अरोगुंगा हम सब जानते हैं कि श्रीगुसांईजी ने दूसरे दिन रसखान को नाम निवेदन एवं ब्रह्म संबंध कराया और दर्शन कराये। रसखान दर्शन कर जाने लगे तो श्रीठाकुरजी ने हाथ पकड़ लिया और कहा अब तू कहां जाता है। हम सब जानते हैं कि श्रीठाकुरजी जब गायें चराने जाते तो रसखान को साथ ले जाते एवं रसखान लीलाओं का दर्शन कर कीर्तन किया करते थे।

अतः मेरा यह निश्चित मत है कि श्रीनाथजी उन्हें ही अपनी शरण में लेते हैं जो किसी वैष्णव के माध्यम से गुरू की शरण में आता है एवं गुरू से नाम निवेदन एवं ब्रह्म संबंध लेता हैं। अतः हमें श्रीनाथजी की शरण में जाना है तो वैष्णव का संग करें एवं गुरू द्वारा श्रीनाथजी से सम्बन्ध स्थापित करे। श्रीजी निश्चित हमें शरण में लेगे एवं हम सब कुछ उन पर छोड़कर श्रीजी की सेवा और उनका हर समय स्मरण करे। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

भक्त शिरोमणि श्रीचतुर्भुजदासजी को भगवल्लीला का आभास

—पं. विष्णुदत्त पुरोहित

कुम्भनदासजी की वार्ता के अनुसार वे श्रीजी की लीला में ही रहते, खेलते, प्रश्नोत्तर करते एवं उनकी भंगिमाओं के दर्शन कर पद गाते। एक दिन उन्हें श्रीजी ने चतुर्भुज रूप के दर्शन कराये। उसी दिन कुम्भनदास को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम उन्होंने तत्काल लीला (चतुर्भुज रुप) के दास मानकर चतुर्भुजदास रक्खा।

ग्यारह दिन की अवस्था में चतुर्भुजदास को गुसांईजी के पास ले जाकर नाम स्मरण करवाया। जब चतुर्भुजदासजी 41 दिन के हुए तब उनको गुसांईजी से निवेदन करवाया। इस दिन श्रीनाथजी ने उनका निवेदन स्वीकार कर इतनी सामर्थ्य दे दी कि वे नन्हें बच्चे से बड़े होकर खेलने, बोलने लग जाते व पुनः मुग्ध बालक बन जाते।

जब कुम्भनदासजी एकान्त में बैठते तो चतुर्भुजदासजी उनसे भगवद्वार्ता करते पूछते और पद गाते। किन्तु कोई लौकिक पुरूष आ जाता तो वे पुनः बालक बन जाते।

ठाकुरजी के साथ खेलने में जो लीलाएं देखते उनका पद गाते ऐसी भगवद् कृपा आप पर थी। जिस दिन से लीलाओं का अनुभव हुआ तभी से सर्वव्यापी वैकुण्ठ–सम्बन्धी लीला सर्वत्र दीखने लगी। यह भगवत् कृपा का ही फल था। श्रीकुम्भनदासजी को भगवान् के पोढ़ने के दर्शन हुए तो वे कीर्तन गाने लगे–

"वे देखो बरत झरोखन दीपक
हरि पोढ़े उँची चित्रसारी।"

यह सुनते ही नन्हें चतुर्भुजदासजी बोल उठे–

"सुंदर बदन निहारन कारन
बहुत जतन राखे कर प्यारी।"

तब कुम्भनदासजी ने अनुभव किया कि श्रीगुसांईजी की कृपा से पूर्ण अनुभव हो गया है एवं चतुर्भुजदासजी के आवागमन में देर सवेर होने पर वे समझ जाते कि यह प्रभु की सेवा में ही रहते है।

एक दिन चतुर्भुजदासजी ने श्रीगोवर्द्धननाथजी के श्रृंगार के दर्शन किये। उस समय श्रीगुसांईजी आरती दिखा रहे थे तब चतुर्भुजदासजी ने निम्न पद का गान किया–

सुभग श्रृंगार निरख मोहन को,
ले दरपन कर पिय हि दिखावे।
आपन नेक निहारिये बलि जाऊँ,
आज की छबि कछु कहत न आवे।।

तदनन्तर श्रीगुसांईजी गोविन्द कुण्ड पर पधारे। तब एक वैष्णव ने उक्त पद का रहस्य पूछा कि रोज आरती दिखाने पर भी आज की छवि कछु कहत न आवे" इस भाव का क्या मर्म हो सकता है। गुसांईजी ने फरमाया कि–

एक अन्य पद चतुर्भुजदासजी ने यह गाया–

"माई री आज और काल और छिन छिन प्रति और और....................

इसका भी रहस्य पूछा कि नित्य व सर्वत्र लीला होते हुए भी यह और और क्यू कहा है तब श्रीगुसांईजी ने आज्ञा की–

"भगवत् लीला में यही विलक्षणता है कि वह नित्य होते हुए क्षण क्षण में नयी नयी दिखायी देती है। लीलास्थ जीवों को और लीला के दर्शन करने वालों को वह क्षण क्षण में नयी रूचि पैदा करती है।

गोपालदासजी ने वल्लभाख्यान के चौथे 'कड़वा' की पांचवी टुक में गाया है–

"एक रसना केम कहूँ गुन प्रकट विविध प्रकार।
नित्य लीला नित्य नौतन, श्रुति न पामें पार।।

ऐसी भगवल्लीला है। इसी आभास से चतुर्भुजदास लीला को आत्म सात करने में सक्षम हुए।

एक दिन श्रीगुसांईजी श्रीगोकुलजी में बिराज रहे थे और श्रीगिरधरजी आदि सब बालक श्रीजीद्वार में। उस समय वहा रासधारी आ गये तब श्रीगोकुलनाथजी ने श्रीगिरधरजी से आज्ञा लेकर पारसोली रास शुरु करवा दी, रास में खूब गायन हुआ। फिर श्रीगोकुलनाथजी ने चतुर्भुजदासजी को आज्ञा की कि आप भी कुछ गाइये। चतुर्भुजदासजी ने कहा कि वे केवल श्रीजी के समक्ष ही गायन करते है। श्रीगोकुलनाथजी की प्रार्थना पर श्रीनाथजी स्वयं जागकर एवं श्री गिरधरजी को जगाकर स्वयं पारसोली पधारें। श्रीनाथजी और श्रीगिरधरजी के दर्शन केवल श्रीगोकुलनाथजी और श्रीचतुर्भुजदास को ही होते है। दर्शन कर श्रीचतुर्भुजदासजी कीर्तन करने लगे।

"अद्भुत नर भेस धरे जमुनातट स्याम सुन्दर।
गुन निधान गिरिवरधर रास रंग राचे।।"

दूसरा पद "प्यारी ग्रीवा भुज मेली नृत्यत प्रिय सुजान"

आदि पदो से श्रीजी बावा को रिझाया, भगवान व श्रीगिरिधरजी के पुनः पधारने व अधिक जागरण होने से श्रीगिरिधरजी ने श्रीनाथजी को प्रातःकाल नहीं जगाया। वहीं श्रीगुसांईजी श्रीगोकुलजी से पधार गये एवं ठाकुरजी के न उठाने का कारण पूछा और रास में जागने की वजह से न उठाये यह श्रीगिरिधरजी ने जब बताया तो श्रीगुसांईजी ने बताया कि श्रीनाथजी सदैव जागते एवं रास करते रहते है। तब शंखनाद करवाया। श्रीगोकुलनाथजी को भी आज्ञा की कि श्रीनाथजी को पधारने की ऐसी प्रार्थना नहीं करनी चाहिये।

एक दिन श्रीगुसांईजी ने चतुर्भुजदास को आज्ञा की कि अप्सरा कुण्ड जाकर रामदास भीतरिया को बुला लाओ और पुष्प भी लेते आना।

चतुर्भुजदास ने रामदास को भेज दिया व स्वयं पुष्प लेने लग गये। फूल चुन कर आते हुए श्रीगोवर्द्धन की कन्दरा से श्रीस्वामिनीजी सहित श्रीनाथजी को पधारते हुए चतुर्भुजदास ने दर्शन किये तब यह पद गाया–

"गोवरधन गिरि सघन कंदरा,

रैन निवास कियो पिय प्यारी।"

दूसरा पद–

"रजनी राज कियो निकुंज नगर की रानी।"

यह पद सुनकर स्वामिनीजी अत्यन्त प्रसन्न हुई।

एक बार श्रीगुसांईजी परदेस पधारे हुए थे। तब श्रीगिरधरजी की इच्छा हुई कि श्रीनाथजी को अपने घर मथुरा में पधरावें तो ठीक है। प्रभु की आज्ञा लेकर फाल्गुन कृष्ण 6 को शयन के बाद मथुरा में पधरवाया। फाल्गुन कृष्ण 7 को उत्सव किया, घर में जो कुछ था सब अर्पण कर दिया। किन्तु कमला बेटीजी ने एक नथ घर में रख ली। वह अनजान थी। तब श्रीनाथजी ने सर्वस अर्पण की भावना को मानते वह नथ भी मांग ली।

चतुर्भजदासजी नित्य श्रीगिरिराज पर बैठकर विरह और हिलग के गीत (पद) गाते। श्रीनाथजी सदा गोचारण से आते, दर्शन देते। वैशाख सुदी 13 की संध्या को यह पद गाया–

श्रीगोवरधनवासी साँवरेलाल। "तुम बिन रह्यो न जाय"

वैशाख शुक्ल 14 के प्रातः एक प्रहर रात्री रही तो श्रीनाथजी ने श्रीगिरिधरजी को आज्ञा दी कि आज राजभोग गोवर्द्धन पर्वत पर अरोगेंगे। मंगला के पश्चात् सेवकों को भेज गोवर्द्धन पर साफ सफाई अपरस आदि करवाई। अतः शयनभोग के साथ ही राजभोग अरोगा। तब से नरसिंह चतुर्दशी को दो बार राजभोग अरोगते आ रहे है। एक नित्य नेम का व दूसरा शयन भोग का।

एक दिन चतुर्भुजदासजी श्रीगुसांईजी के साथ श्रीगोकुलजी में गये। श्रीनवनीतप्रियजी के दर्शन किये। पश्चात् गोपालपुर आ गये। वहां कुम्भनदासजी ने पूछा कहां गये थे तो वे बोले में श्रीगोकुलजी गया था। कुम्भनदासजी ने पूछा कि तुम प्रमाण में क्यों चले गये। चतुर्भुजदासजी ने यही प्रश्न श्रीगुसांईजी से पूछा तो उन्होंने आज्ञा की कि भगवल्लीला सब एक समान है। श्रीकुम्भनदासजी की किशोर लीला में बहुत आसक्ति है इसलिये भगवल्लीला में भेद समझते है।

श्रीठाकुरजी विरूद्ध धर्माश्रय है। एक कालावच्छिन्न श्रीप्रभु सर्वत्र लीला करते है, यह सुनकर चतुर्भुजदासजी बहुत प्रसन्न हुए।

चतुर्भुजदासजी के पुत्र राघवदास थे। उन्होंने भी लीला का अनुभव करने के बाद एक पद लिखा–

'ए चल जायें जहाँ हरि क्रीडत गोपिन संगा"

जब इस धमार की दस तुकें पूरी हो गयी तो राघवदासजी की देह छूटी और भगवल्लीला में प्रवेश किया।

उनके पश्चात् राघवदासजी की पुत्री ने डेढ़ तुक बना उस धमार को पूरा किया।

ऐसे श्रीचतुर्भुजदासजी थे जो प्रभु की लीलाओं का साक्षात्कार करने में सक्षम थे तथा उनके पुत्र और पौत्री भी परम भगवदीय थे। ।। जय श्रीकृष्ण ।।

गो. ति. श्री १०८ श्री इन्द्रदमनजी महाराज (श्रीराकेश बावा) के महामनोदर चरित्र की विवेचना–प्रशस्ति

–श्रीहरिकृष्ण शास्त्री, गोकुल

छन्द

जयति अलौकिक वंश अंश जय जयति यज्ञफल।
जयति रास वनिता प्रभाव पूरित स्वभाव बल।।
जयति अनुग्रह पथ प्रचार अति भार बहेता।
जयति कुटिल कलिकाल मध्य सम्भाव्य सुनेता।।
जय जयति जयति गिरवरधरन सेवा सुख सर्वस्व जय।
जय जयति जयति आसुरबलन इन्द्रदमन वर्चस्व जय।।१।।

जयति अज्ञता तम वितान राकेश नवोदित।
जयति प्रेम पथ पथिक प्रार्थ्य आश्लेष रसोदित।।
जयति भक्ति आचार पंथ आचार्य दयान्वित।
जयति विमुख आचार्य वचन जन प्रति रोषान्वित।।
जय जयति जयति गिरवरधरन ब्रज पावन रज पुलक जय।
जय जयति जयति वल्लभ प्रवर तिलकायत कुल तिलक जय।।२।।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

पुष्टिमार्ग में उष्णकालीन सेवाओं का भाव–रूप,

–डॉ. श्री गगन बिहारी दाधीच

चंदन पहेर नाव हरि बैठे, संग वृष्भा दुलारी हो,
यमुना पुलिन झूल शोभित तहाँ, खेलत लाल बिहारी हो।

राग, भोग और श्रृंगार सेवा से जुडी पुष्टिमार्गीय सेवा के भाव रुप ठाकुरजी की चारों अनन्य सखियों की श्रृंगारिकता से सम्बद्ध माने गये हैं। ऋतु व मौसम के अनुरुप ही सखी की श्रृंगारिकता को ठाकुरजी के साथ रचा जाता हैं तथा राग व भोग ही नहीं श्रृंगार सेवा में भी इन्हीं भाव रुप व प्रतीकों को सुसज्जित करने की परम्परा रही हैं।

वैष्णव सम्प्रदाय में उष्णकाल की सेवाएं यमुनाजी से सम्बद्ध मानी गई हैं। ठाकुरजी की चारों यूथ–गोपिकाओं (नायिकाओं में) राधिका, ललिता, चंद्रावलि तथा यमुनाजी में से ठाकुरजी की रंगत यमुनाजी (स्वामिनीजी) से ही मेल खाती दिखती है। ठाकुरजी हो या यमुनाजी, दोनों में ही श्याम रंगत का रस सौन्दर्य व अलौकिक श्रृंगारिकता का सुन्दर समावेश उष्णकालीन शीतल सेवाओं के चरम रुप को दर्शाता हैं। शीतल–सुवासित भावानुरुप उष्णकाल की इस अवधि में यमुनाजी में खिले कमल तथा शीतल जमुना जल की विविध सेवाएं धराकर जमना पुलिन तट पर स्वामिनी संग ठाकुरजी की श्रृंगारिक लीलाओं को मुखरित किया जाता हैं।

उष्णकाल की इस अवधि में ठाकुर सेवा के शीतल–सुवासित भावरुपों को साक्षात् रचा जाता हैं तथा अक्षय तृतीया ही वैष्णव मंदिरों में शीतल–सुवासित सेवाओं का शुभारंभ हो जाता हैं। आखा तीज से ही ठाकुरजी के मंदिरों में खस–खस के बने पर्दे लगा कर जलघरिया सेवकों द्वारा जल का छिड़काव कर शीतल परिवेश की रचना की जाती हैं। यहीं नहीं, ठाकुरजी को तपन न लगे, इसी भाव से गोवर्धनधारी के श्रीअंग, विशेष रुप से वक्ष स्थल, श्रीहस्त व चरणारविन्द पर चंदन लेप की सेवा रची जाती हैं।

इसके बाद वैशाख शुक्ला चतुर्दशी की सेवाओं में भी शीतल–सुवासित भावों को रचा जाता हैं। इस दिन से ही प्राकट्य स्वरुपों के सम्मुख जमना जल भरा रजत थाल धराया जाता हैं। यही नहीं, रोहिणी तपने की अवधि में ठाकुरजी को संध्या समय स्नान कराकर चंदन लेप की सेवा रची जाती हैं तथा शयन के समय कीर्तनकार समाज जयदेव रचित गीत गोविन्द में उल्लेखित अष्टपदी 'चंदन चर्चित नील कलेवर पीत वसन वनमाली' की स्वर लहरियाँ गुंजारित कर शीतल परिवेश की रचना करते हैं।

यमुनाजी को समर्पित शीतल सुवासित सेवाओं का चरम रुप यमुना दशमी, नाव मनोरथ, गंगा दशमी तथा स्नान यात्रा की भावपूर्ण सेवाओं में बाखूबी दिखाई देता हैं। जेठ माह के कृष्ण पक्ष की दशमी को यमुना दशमी का भाव तो शुक्ल पक्ष की दशमी को गंगा दशमी (गंगा दशहरा) के भावानुरुप शीतल सुवासित भाव रचे जाते हैं। धवल वस्त्र तथा मोतियों के आभरणों से सुशोभित ठाकुरजी को यमुना दशमी के दिन ध्रुवबारी

समीप सिंहासन पर विराजमान कराया जाता हैं तथा पत्र–पुष्प से रुपांकित कुंज को सजा कर डोल तिबारी व मणी कोठा में जमना भाव से शीतल जल भरा जाता हैं। कमल व कमल पत्र के साथ सुवासित पुष्प जमना जल में पधराये जाते हैं। घुटनों तक जल में खड़े होकर वैष्णवजनों को यमुनाजी की लीला व ठाकुरजी के दर्शनों का जो आनन्द मिलता है तो लौकिक–अलौकिक दोनों चंदावलि नारि, मारग में खेलत मिले घनश्याम मुरारि........ की स्वर लहरियाँ भी ठाकुरजी व स्वामिनीजी की श्रृंगारिकता को मुखरित करती हैं।

शीतल–सुवासित सेवाओं के इसी क्रम में ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को नाव मनोरथ का भाव रचा जाता है तथा गुलाबी रंगत में सुशोभित गोवर्धनधारी के सम्मुख डोल तिबारी में यमुना जल भर कर काष्ठ रंगाकित व रजत नौका में वैष्णव स्वरुपों को विराजमान कराकर नौका विहार की साक्षात् सेवाएं रची जाती हैं। इसके चार दिन बाद गंगा दशहरा के भाव रुप की सेवाएं प्राकट्य स्वरुपों को अंगीकार करायी जाती है। गोवर्धनधारी के सम्मुख इस दिन भी डोल तिबारी में जमना जल भरकर कमल पुष्प पधराते हैं और विशेष रुप से ठाकुरजी को केसर, गुलाब जल व बरास में रंगाकित सुवासित वस्त्रों से बने पंखों से शीतल वायु की सेवा धराते हैं।

ज्येष्ठ पूर्णिमा को वैष्णव मंदिरों में स्नान यात्रा का भाव रच कर गोपी वल्लभ में गोवर्धनधारी को सवा लाख आमों का भोग अरोगाया जाता हैं। इससे एक दिन पूर्व वल्लभ पीठाधीश्वर अपने अधिकारी व सेवकगणों के साथ गणगौर बाग स्थित श्रीजी बाबा के निजि जलाशय चूआ बावड़ी से स्वर्ण कलश में जल भर कर ठाकुरजी की हवेली पहुँचते हैं जहां ज्येष्ठाभिषेक स्नान यात्रा के लिए जल का अधिवासन किया जाता है। इस अवसर पर गुसांई कुल जन आदि द्वारा मंत्रोच्चार के साथ ठाकुरजी को अभिषेक सेवा धरायी जाती हैं और विशेष भाव रुप से गोवर्धनधारी को सवा लाख आमों का भोग अरोगाया जाता हैं। इस दिन की सेवा में गुंजारित होने वाली पदावलियों में ठाकुरजी व स्वामिनीजी का लीला भाव मुखरित होता हैं।

उष्णकालीन सेवाओं में पुष्प एवं पुष्प निर्मित वस्त्र व आभरणों की सेवा का आध्यात्मिक महत्व रहा हैं। जिस प्रकार के अंग वस्त्र ठाकुरजी को श्रृंगार सेवा में धराए जाते हैं, सांध्यकालीन झांकी के समय मोगरे की कलियों व सुवासित पुष्पों से वैसे ही वस्त्रालंकार बनाकर ठाकुरजी के लाड़ लड़ाए जाते हैं। धोती–पटका हो या आडबन्द व परधनी, सभी कलियों से बनाए जाते हैं और श्रृंगार सज्जा के आभूषण भी पत्र–पुष्प व कलियों से ही बनते हैं। यही नही, इन सेवाओं में कमल व कदम्ब पुष्प की सेवा का विशेष महत्व माना गया हैं।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

विशाल बावा वैष्णवों के संग लाए स्नान का जल

—श्री नवीन सनाढ्य

वल्लभ संप्रदाय की प्रधानपीठ श्रीनाथद्वारा में स्थित श्रीजी प्रभु की हवेली में स्नान यात्रा का उत्सव हजारों वैष्णवों की साक्षी में परंपरा से सराबोर होकर मनाया गया।

एक दिन पूर्व प्रातःकालीन वेला में शृंगार दर्शन उपरांत तिलकायत राकेश महाराज के सुपुत्र चि. विशाल बावा, श्रीजी प्रभु के मुखिया इन्द्रवदन गिरनारा, श्रीलालन प्रभु के मुखिया रजनीकांत साँचिहर, घनश्याम साँचिहर, मुख्य निष्पादन अधिकारी श्री अजयकुमार शुक्ला तिलकायतश्री के निजी सचिव सौभाग्यमल सिंघवी, निरंजन सनाढ्य, राधे गुर्जर, नरेश गुर्जर, गोपाल गुर्जर ''छोटे'', दिनेश गोरवा, सुरक्षा अधिकारी प्रतापनाथ चौहान, समेत कई वैष्णवों के संग गणगौर बाग स्नान का जल लेने पधारें।

धवल परिवेश में छटा बिखेर रहे श्री विशाल बावा का अप्रतिम सौन्दर्य एवं वैष्णवों द्वारा लगाए जा रहे ''गिर्राज धरण की जय आज के आनंद की जय'' के जैकारें से समूचा माहौल भक्तिमय व ब्रज सरीखा बन गया। विशाल बावा ने गणगौर बाग में स्थित ''चूआ की बावडी'' से स्वर्ण घट में स्नान का जल भरा वहीं वैष्णवों व स्थानीय श्रद्धालुओं ने पात्रों में जल भरकर हवेली के लिए डग भरें।

गणगौर बाग से विशाल बावा की अगुवाई में लवाजमा शुरु हुआ जो इमली बाजार, महादेवजी की घाटी, फाटक दरवाजा होते हुए प्रीतमपोल प्रवेश द्वार से हवेली में पहुँचा। हवेली में चांदी के घोल (बड़े पात्र) में स्नान के जल को भरकर केसर, चंदन, पुष्प, खस, आदि सामग्री से अधिवासित (शुद्ध) किया गया।

जन सैलाब उमड़ा स्नान के दर्शन में :—

स्नान यात्रा के दिन तड़के श्रीजी प्रभु व श्रीलाड़लेलाल की विशेष झांकी के दर्शन खुले जिसमें विशाल बावा ने स्वर्ण पात्र से अधिवासित जल से बाल स्वरुपों को स्नान

कराया। स्नान के दर्शन में वैष्णवों की जनमैदिनी उमड़ी। उल्लेखनीय है कि वर्ष में केवल दो बार स्नान यात्रा व जन्माष्टमी के दिन ही स्नान के अलौकिक दर्शन होते है। स्नान दर्शन के बाद श्रीजी प्रभु को सवा लाख आम का भोग अरोगाया गया।

ठसाठस भरी वैष्णवों से श्रीजी नगरी :–

स्नान यात्रा उत्सव का आनंद लेने के लिए देश के कोने–कोने से वैष्णवों की आवक हुई। भक्तों ने पूरे आनंद व उल्लास से श्रीजी प्रभु के दर्शन का लाभ लिया।

धूमधाम से मना स्नान यात्रा का उत्सव :–

विशाल बावा ने कराया स्नान

वल्लभ संप्रदाय की प्रधान पीठ श्रीनाथद्वारा में स्थित श्रीजी प्रभु की हवेली में स्नान यात्रा का उत्सव परम्परा से सराबोर होकर धूमधाम से मनाया गया।

पीठाधीश्वर श्री इन्द्रदमनजी महाराज के लाल चि. विशाल बावा ने हजारों वैष्णवों की साक्षी में श्रीजी प्रभु को अधिवासित जल से स्नान कराया। श्रीजी प्रभु को धवल धोती व उपरणा अंगीकार कराया गया तत्पश्चात् विशाल बावा ने ''गिर्राज धरण की जय आज के आनन्द की जय'' के जैकारों के साथ ठाकुरजी को स्नान कराया। स्नान के दौरान 11 पंडितो (विद्वानों) ने राज पुरोहित कृष्णकांत पण्ड्या के सानिध्य में वैदिक मंत्रोच्चार किया।

स्नान के दर्शन में गुजराती वैष्णवों के संग ग्रामीण अंचलो से भी हजारों श्रद्धालुओं ने दर्शन का आनंद लिया। स्नान यात्रा पर श्रीजी प्यारे को सवा लाख आम का भोग अरोगाया गया।

।। जय श्रीकृष्ण।।

On Line Cottage Booking व On Line Donation

व्यवस्था का शुभारम्भ

-कैलाश पुरोहित, प्रभारी कम्प्यूटर मंदिर मण्डल, नाथद्वारा

गो. ति. 108 श्री राकेशजी महाराज श्री के शुभार्शीवाद से नाथद्वारा मन्दिर मण्डल ने वैष्णवों की सुविधार्थ On Line Cottage Booking व On Line Donation व्यवस्था का दिनांक 25.6.2010 को मोतीमहल परिसर में एक समारोह पूर्वक आयोजन में चि. गो. श्री विशाल बावा सा. के कर कमलों से विधिवत शुभारम्भ किया गया।

वैष्णव इन्टरनेट के माध्यम से मन्दिर मण्डल की वेब साईट www.nathdwaratemple.org पर अपना Login id बना कर इच्छीत दिनांक को अपना इच्छीत कोटेज/ब्लॉक आरक्षित कर सकते है। मन्दिर मण्डल द्वारा H.D.F.C. Bank से Payment Gate Way सुविधा ली गई है। वैष्णव किसी भी बैंक के कार्ड, मास्टर कार्ड, वीजा कार्ड, क्रेडिट कार्ड, डेबीट कार्ड के माध्यम से उक्त सुविधा का लाभ ले सकते है। प्रथम चरण में यह सुविधा न्यू कोटेज के लिये प्रारम्भ की गई है। कुछ समय बाद धीरज धाम, बालासिनोर सदन, चितलवाला विश्रान्ति गृह एवं अग्रवाल कोटेज भी इस सुविधा से जोड़ दिये जायेंगे।

साथ ही वैष्णव जो दैनिक/साप्ताहिक/पाक्षिक/मासिक ठाकुरजी को भेंट भेजना चाहते है वे भी www.nathdwaratemple.org में जाकर On Line Donation (Bhent) जमा करा सकते है।

मन्दिर मण्डल द्वारा शीघ्र ही On Line Manorath भी प्रारम्भ किया जाएगा जिसमें वैष्णव घर बैठे ही ठाकुरजी के विभिन्न मनोरथ राजभोग, मंगलभोग, शयनभोग, पलना, गौमाताजी सेवा आदि का लाभ उठा सकेंगे। इसमें वैष्णव को प्रसाद भेजने की भी योजना है। वैष्णव मनोरथ बुक करा कर नाथद्वारा आकर भी प्रसाद प्राप्त कर सकेगा।

इस व्यवस्था में अहमदाबाद के वैष्णव श्री रितेश भाई सुतरिया ने सेवा भाव से कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग एवं वेब साईट का निर्माण किया।

इस आयोजन में मुख्य निष्पादन अधिकारी श्री अजयकुमार शुक्ला, कृष्ण भण्डार अधिकारीजी श्री सुधाकर शास्त्री, महाराजश्री के सचिव श्री सोभाग्यमल सिंघवी, अधिशाषी अभियन्ता श्री सुनिल कुमार गुप्ता, प्रबन्धक वित्त श्री रामपाल लौहार, प्रबन्धक प्रशासन श्री दिनेश जोशी, श्री रितेश सुतरिया, निजी सहायक श्री पुरुषोत्तम पालीवाल, कम्प्यूटर प्रभारी श्री कैलाश पुरोहित, श्री जगदीश सोनी, श्री टी. जे. थोमस, श्री महेश गुर्जर, श्री दयाशंकर पालीवाल, श्री एल. डी. पुरोहित, श्री कमलेश पालीवाल, श्री राजेश्वर त्रिपाठी, श्री निरंजन सनाढ्य, श्री टीकम जोशी H.D.F.C. Bank के प्रतिनिधि व गणमान्य नागरिक, पत्रकार बन्धु एवं वैष्णव जन उपस्थित थे।

।। जय श्रीकृष्ण ।।

THE LIFE OF SHRI MAHAPRABHU VALLABHACHARYA (c. 1479-1531)

-SHYAM DAS

BRAJA LILAS

After arranging Shri Nathji's temple affairs, the bhakti master went to Vrindavan. The bhakta Gopaldas sings of that lila realm,
Where black bees buzz
While the trees, flowers and jasmine buds
Perfume the air with unlimted fragrance.
There a delightful Shyam Tamal tree grows
With clusters of iridescent flowers
In Vrindavan, the blessed Svaminis please Krishna
With their lovely lilting movements and gestures.
Upon hearing the divine notes and sounds,
Sages appearing as Vrindavan peacocks
Fall into meditative trance
As they imbibe the endless lila's nectar.
Boundless radiance engulfs the
Lovely lila abode-
Krishna delights there
Playing in diverse rasa lila circles.

After arriving in the divine area of Vrindavan, Shri Vallabhacharya offered some "prasada" to his disciple Prabhudas.

"I can not accept this now, I have not bathed yet."

Shri Vallabhacharya explained, "In this sacred land of Vrindavan, Shri Krishna lives within every leaf and plays a lovely melody on His flute. In such a sacred land, where every grain of sand is sacred, why consider if you have bathed or not?"

When Prabhudas turned towards the trees, he saw Shri Krishna's face beaming in every leaf and flower.

Shri Vallabhacharya worshipped many different forms of Vrindavan Krishna. Sometimes he worshipped Him as a child (as Bal Krishna) or as youthful Shri Nathji, or as Gokul Chandramaji, Shri Krishna as the divine flute player. He spoke to his followers about Vrindavan and his devotion to Shri Krishna,

(To be Continued................)

|| जय श्रीकृष्ण ||

पुष्टिमार्ग के वैष्णव वृन्द को महाप्रभु श्रीमद्‌वल्लभाचार्यजी के दार्शनिक सिद्धान्त शुद्धाद्वैत एवं पुष्टिमार्गीय सेवा–पद्धति से परिचित कराने के साथ ही सेव्य प्रभु श्रीनाथजी जो श्रीकृष्ण के साक्षात् बालस्वरुप है, के प्रति स्नेह, सेवा एवं समर्पण भाव की अभिवृद्धि के लिए मन्दिर मण्डल विगत दस वर्षों से **"पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका"** का निरन्तर प्रकाशन करता आ रहा है। वैष्णवों से आग्रह है कि पुष्टिमार्ग–पत्रिका के सदस्य अवश्य बनें और पुष्टिभाव प्रसारार्थ अन्य लोगों को भी अवश्य सदस्य बनावें। इस हेतु कृपया सदस्यता फार्म भर कर शीघ्र भिजावें।

सदस्यता फार्म

पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका

प्रकाशक :– मुख्य निष्पादन अधिकारी नाथद्वारा मन्दिर मण्डल नाथद्वारा, पिन कोड– 313301
फोन : 02953–232482, फेक्स : 02953–232482, E-mail <shrinathdwar@bsnl.in>

ICICI Bank A/C No. 004501014021 बड़ौदा बैंक A/C No. 10300100000318

www.shreenathjee.com www. nathdwara. in

सदस्यता शुल्क	वार्षिक	पांच वर्षिय	आजीवन
भारत में	Rs. 60	Rs. 300	Rs. 800
विदेशों में	US$ 12	US$ 60	US$ 160

मुख्य निष्पादन अधिकारी
मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा, पिन– 313301

मैं/मैसर्स पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका की वार्षिक/पांच वर्षिय/आजीवन सदस्यता माह————————वर्ष————————— से लेना चाहता/चाहती हूं। इस हेतु राशि——————————————— का एम. ओ./एम. टी./डी. डी. नं.———— (नाथद्वारा में देय) संलग्न कर प्रेषित है। (कृपया एम. ओ./एम. टी./डी. डी./या ICICI /BOB बैंक खाते में जमा कराई राशि संग "पुष्टिमार्ग पत्रिका हेतु" का उल्लेख कर स्लिप भिजावें)।
(डी.डी., बैंक चैक आदि मुख्य निष्पादन अधिकारी, मन्दिर मण्डल, नाथद्वारा के नाम बनवावें।)

आवेदक के हस्ताक्षर

आवेदक का नाम————————————————————

पता————————————————————

जिला——————————राज्य————————पिन कोड————

फोन—————————— ई–मेल——————————

पत्र, आलेख एवं सदस्यता भिजाने हेतु पता–
संपादक :–पुष्टिमार्ग त्रैमासिक पत्रिका,
(दयाशंकर पालीवाल, पुष्टि प्रसार अधिकारी, 09829755702)
लोधाघाटी, नाथद्वारा पिन–313301, जिला– राजसमन्द, (राज.)

Shrinathji Temple Board, Nathdwara has been publishing "Pushti Marg" Quarterly Magazine for last ten years to propagate and expand the, philosophical Doctrine of Shudhadwet and system of Pushti Marg sect propounded by Maha prabhu Shrimad Vallabhacharyaji.

All the devoted Vaishnavas are beseeched to be the members of and serve the Pushti Marg by making others to do the same.

MEMBER SHIP FORM

PUSTIMARG QUARTERLY MAGAZINE

Publisher :- Chief Executive Officer, Temple Board, Nathdwara-Pin-313301

Phone : 02953-232482, Fax-02953-232482, E-mail <shrinathdwar@bsnl.in>

ICICI Bank A/C No. 004501014021 **Bank of Baroda A/C No. 10300100000318**

www.shreenathjee.com **www. nathdwara. in**

Member ship Fee	Annual	Five Years	Life time
India	Rs. 60	Rs. 300	Rs. 800
Abroad	US$ 12	US$ 60	US$ 160

Chief Executive Officer

Temple Board Nathdwara-313301

I/Messers want to be the member of Pushti Marg Quarterly Magazine for one/Five Years/Life time from the month................year. For this M.O./M.T./D.D. (Payable at Nathdwara) No. .... is enclosed here with. (please endorse the referance "For Pushtimarg Patrika" while sending M.O./M.T./D.D./ or ICICI/BOB Bank slip.)

(D.D./Bank Order Should be on the name of C.E.O. Temple Board. Nathdwara)

Signature of the Applicant

Name of the Applicant..

Adress..

..

District..............................State.......................Pin.............

Phone...............................E-mail.......................................

Adress for Sending letters, Articals and Member ship:-

EDITOR :- Pushti Marg Quarterly Magazine

(D. S. Paliwal, Pusti Extension Officer, 09829755702)

Lodha Ghati, NATHDWARA, Dist. Rajsamand, Rajasthan. Pin-313301